पंक और पंकज

के० कुमारेन्द्र

दिल्ली पुस्तक सदन
दिल्ली : पटना : जयपुर

एक

जयनाथ ने देखा—सड़क पर एक भिखमंगा पड़ा था। आंखों में मक्खियां घुसती चली जा रही थीं—जैसे आदमी की आँखें नहीं, किसी जानवर के जख्म का नासूर हो। और नासूर से ज्यादा थीं भी कहां उसकी आंखें—ढीटों के गिलटे के गिलटे लटक रहे थे।

जयनाथ ने ध्यान से देखा तो उसे लगा—आदमी मरने के बाद जलाया इसलिए नहीं जाता कि उसकी लाश न सड़े, मिट्टी खराब न हो; बल्कि इसलिए कि कहीं जिन्दा होकर फिर दूसरों की आंख में किरकिरी न बन जाय? वरना जीवित इन्सान की इस कदर उपेक्षा? उफ...उसने उसकी ओर से आंखें फेर लीं, चलने लगा।

"ऐ बाबू! देखना मेरे बाबा की नब्ज जरा, मर गया दीखता है?"

जयनाथ लौट पड़ा। बारह-तेरह साल की साँवली सी लड़की—चीचड़ी—घिनौनी···

नब्ज देखी उसने। वाकई वह तो मर ही चुका था—वह उस लड़की की तरफ देखता रह गया। "क्या लगता था तेरा यह?" जयनाथ ने लड़की से पूछा।

'बाप।'

"तब तो बुरा हुआ ?"

"अच्छा ही हुआ।"

"क्यों ?" आश्चर्य से जयनाथ ने पूछा।

"भूखा नंगा बुखार से तड़पता रहा था बाबू। पूरे चार दिन से।" लड़की लम्बी सी सांस लेकर रुक गयी।

"क्यों ?"

"क्यों--क्यों, क्यों कर रहे हो बाबू। इत्ते सारे आदमी रोज भूखों मर रहे हैं। मुझे क्या पता, क्यों ?"

"तेरा क्या होगा अब ?"

"भीख मांगती-मांगती मैं भी मर जाऊंगी किसी दिन। ऐसे ही जैसे मेरा बाप मरा।"

"मर क्यों जायेगी ? जी भी तो सकती है तू।"

"ना बाबू। मैं तो जल्दी ही मर जाऊंगी तो ठीक है। बाबा इत्ते दिन जिया, क्या मिल गया इसे। भूखा ही तो मरा ? मैं तो फिर लोंडिया हूं।"

"लोंडिया है तो क्या ?"

"क्या, तुम्हें पता नहीं ! कल की ही तो बात है। टेसन पर भीख मांग रही थी मैं। मेरे साथ भूरी भी थी। वोई भूरी जिसकी उमर कोई चौदह पन्द्रह साल की है। एक बाबू ने उसे रुपया दिया पूरा, और मुझे कुछ भी नहीं ?"

"क्यों ?"

"फिर वोई, क्यों। अरे बाबू, वह जवान थी, अभी"—वह शरमा गई। जयनाथ को लगा जैसे चींचड़ी भी औरत की जात है। पूछा उसने--"जवानी से रुपये का ताल्लुक री ?"

"ताल्लुक तो पूरा है बाबू। पर तुम तो मालूम पड़ता है—गुच्चू हो गुच्चू। जरा-सी बात भी नहीं समझते। अरे, छोट्टी-छोट्टी लोंडियों

को कोई एक पैसा भी नहीं देता और जवान भीख में भी ऐश कर रही हैं। है पता ?"

"नहीं तो, पर तेरा बाप मर गया। पहले इसकी परवा कर। फिर मुझसे बात करना। यूं पड़ी लाश सड़ेगी।"

चीचड़ी ने आकाश की ओर देखा। दो क्षण देखती रही और फिर धरती पर चारों ओर लापरवाही की दृष्टि डाल धीरे से बोली—"जिन्दगी में ई कौन सा कम सड़ा है जो अब अनरथ हो जायेगा। मैं तो कहूं हूं, अच्छा हुआ जो मर गया।"

जयनाथ की अन्तरदृष्टि लड़की की आवाज में जो गीलापन था, उसे भांप गई। ताज्जुब है। आंखों में नमी का चिन्ह भी नहीं और गला गीला। वह बोला—"मालूम पड़ता है, तुझे बाप से नाराजगी थी, क्यों ?"

दुनिया के क़ानून। संस्कृति की अटूट परम्परा ...लड़की का धैर्य टूटने सा लगा। जोर से चीखते हुए उसने अपने बाप के सीने से उसकी फटी कमीज का सिला हिस्सा फाड़कर फेंक दिया। रो पड़ी। एक शब्द भी बिना कहे।

जयनाथ की आंखें खुली रहीं। समाज की भयावह प्रतिमा हंस पड़ी। बूढ़े का सीना सड़ रहा था।

लड़की नीचे को मुंह किए बोली----"अब बताओ। मैं जवान होती तो क्या मेरा बाप यूं सड़ता।"

"..........।"

"अजी काम करो अपना तुम भी। चुप्पी साध ली। जैसे कुछ जानते ही न हों ? जवान होती मैं तो अभी मेरे बाबा का भी किरया करम करने को दसों इकट्ठे हो जाते... पर ...।"

जयनाथ का हाथ जेब में चला गया। दस का एक नोट पड़ा था। निकाल कर फेंकता हुआ बोला—"तू तो बड़ी बक्की है री। ले अपने

बाप का क्रिया-करम करना।" उसकी स्थिति बिगड़ने लगी थी। हृदय आन्दोलित हो रहा था। नोट फेंककर वह चल दिया।

चीचड़ी की निगाह खाल के मांस पर पड़-सी गई। घूरती हुई बोली—नोट को—"क्या यह तुमने मुझे दे दिया है ?"

"हां। तुझे ही दिया है।"

लड़की—"मेरा नाम सनियां है, बाबू। कभी पास हुआ पैसा तो लोटा दूंगी। बाबा की मौत पर भीख नहीं मांगूगी मैं। क्या पता है तुम्हारा ?"

जयनाथ चलता-चलता कहता गया—"जरूरत नहीं सनियां, मौत पर देकर मैं भी वापस नहीं लूंगा ?"

दो

चाय पीकर जब जयनाथ ने कप रखा तो पास खड़ी कुमुद पूछ बैठी—"आज तबियत खराब है क्या आपकी, बड़े उदास हो ?"

"नही तो।"

"झूठ क्यों बोल रहे हो ? शक्ल कह रही है कि उदास हो।"

झूठ ही सही, पर तू मुझे परेशान न कर।"

"क्यों ?"

"मेरी इच्छा।"

"तुम्हारी इच्छा ही सब कुछ हो गई।"

"कम से कम मेरे अपने बारे में।"

"हमारी कोई कीमत ही नहीं है ?"

"शायद नहीं ?"

कुमुद चुप होकर चल दी—कुछ दूर जाकर उसके आर्द्रकण्ठ से निकला स्वर जयनाथ ने सुना—"अब कभी नहीं कहूंगी कुछ तुम से।"

जयनाथ ने उठ कर चाय का प्याला धोया और स्टोव आदि को यथा स्थान रख खाट पर लेट गया। पड़ते ही उसके दिमाग में पार्टी के दफ्तर की बात आ गई और मन में अन्तर द्वन्द्व आरम्भ हो गया। आज वह दलाईलामा के भारत आगमन के बारे में यह कह बैठा था "ठीक है भारत उसका स्वागत कर रहा है और उसे करना चाहिये।"

"क्यों ?"

"वह बौद्धधर्म का नेता है और भारत उसकी प्रादुर्भाव भूमि।"

"लेकिन वह चीन का चोर है।"

"तब फिर क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं हुआ। चीन ने जब उसके शासन में हस्तक्षेप किया, दूसरे आदमी को वहाँ का नेता बनाया। उस हालत में वहां से भागकर यहाँ शरण पाना क्या एक देशद्राही को रक्षण देना नहीं हुआ ?"

"दलाईलामा, देशद्रोही, गद्दार क्यों है।"

"कम्युनिस्ट सिद्धान्त के अनुसार। उसके आधीन जो सामन्तशाही मठाधीशता चल रही थी, उसकी धर्म-भावना के पीछे जो पाशविकता नाच रही थी, जो गरीबों का रक्त बह रहा था, उसे खत्म करने की कोशिश जब की गई तो उसके विरोध में भाग खड़ा होकर उसने गद्दारी नहीं की तो और क्या किया ?"

"लेकिन वहाँ तो उसकी जान का खतरा था। उसे ही क्या, जिसे भी ऐसा खतरा हो, वह भागता ही है ?"

"और दूसरों को उसकी मदद करनी ही पड़ती है। यही न ? जान सकता हूं, क्यों ?"

"कुछ भी हुआ हो, उस आदमी के शासन में पर वह खुद तो कुछ बुरा आदमी नहीं। उस पर तिब्बती जनता की श्रद्धा है। फिर चीन को उसका सम्मान करना चाहिये। जो कि नहीं किया उसने।"

"करता भी क्यों? आँख की किरकिरी को कोई आंख में पड़ा रहने देता है या निकाल फेंकता है। तुम क्या करते हो?"

"निकाल फेंकता हूं, बशर्ते कि आंख की किरकिरी हो। सिर्फ समझ लेने से ही तो कोई आँख की किरकिरी नहीं हो जाती न?"

"जयनाथ! दिमाग खराब हुआ है क्या तुम्हारा। नहीं जानते कि हर वह आदमी जो साम्यवाद के सिद्धान्तों को नहीं मानता, उसके अधीन अपने को न समझ बेकस और मजलूमों का खून पीता है, वह ऐसा शोला है, जिसे कुचल कर बुझा देना चाहिये।"

"कुचलने और खून पीने में फर्क क्या है? जो अपनी बेकस रिआया के पैसे पर मौज उड़ाता है। झूठे धर्म और ढोंग के नाम पर उसका उल्लू बनाता है, उसको कुचलना पार्टी का उद्देश्य और चरम लक्ष्य है।"

"लेकिन जो देश जबरदस्ती जनता की धारणा बदले बिना, उसके रिवाजों के खिलाफ, तहजीब के दायरे से बाहर उस पर कब्जा करना चाहता है, वह क्या है?"

"तुम पार्टी के सदस्य नहीं हो क्या।"

"क्यों, हूं तो!"

"तब फिर ऐसी बेहूदा बातें क्यों करते हो।"

"कुछ भी बेहूदा मैंने नहीं कहा।"

"अगर इसे तुम बेहूदा नहीं समझते तो पार्टी से इस्तीफा दे दो।"

"तुम्हारा मतलब?"

"मतलब यह कि भारत सरकार ने दलाईलामा को शरण दी है, वह कम्युनिस्टों का दुश्मन है और तुम उसके पक्षपाती हो।"

"कम्युनिस्टों का नहीं, चीन का कहिये?"

"चीन और कम्युनिस्टों में फर्क क्या है ?"

"कुछ नहीं क्या ? तब तो यों कहिये कि चीन ही कम्युनिज्म है। ख़ुशोव ही मार्क्स है, जो उन्होंने कह दिया वह सिद्धान्त है, जो कर दिया वही संघर्ष और परिवर्तन है ?"

"नहीं तो क्या ? खैर, इन बातों को छोड़ो। तुम आज कुछ खब्ती से मालूम पड़ रहे हो। जाओ, जाकर सो जाओ। कल सुबह बात करेंगे मगर ध्यान रहे रूस और चीनी की क्रान्ति ही कम्युनिस्टों की गुरु है। दलाईलामा के बारे में तुम्हारी अपनी राय है, मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता। लेकिन पार्टी इसे बरदाश्त नहीं कर सकती। बस !"

जयनाथ लेटे-लेटे ही कराह-सा उठा। उसके सिर में दर्द था और···

दस का नोट आज अपने लेख का पारिश्रमिक, वह एक अखबार से लाया, सो···। एकाएक उसके मुंह से निकला—"माँ जी !"

"हाँ बेटा।"

"जरा १) दे दीजिये।"

"अभी भिजवाती हूं।"

"जा कुमुद दे आ रुपया जय को। क्यों बेटे पैसे नहीं मिले क्या आज ?"

"नहीं।"

"जा बेटी। एक रुपया निकाल कर दे आ शीशे में से।"

"मैं काम कर रही हूं।"

"अच्छी बात है, मैं ही दे आती हूं।"

रुपया मकानदारनी दे गई। जयनाथ ने सोचा जाकर एक सर-दर्द की गोली ले आये और एक चाय का पैकेट। चाय भी खत्म हो गई थी और उसके बिना निर्वाह है नहीं। रही बात भोजन की। रोटी तो सांझ को वह नहीं खायेगा। भूख शायद लगे भी ? लगने से क्या होता है। नहीं खायेगा तो नहीं ही खायेगा।

"अरी कुमुद ! देख तो जय की यह कमीज तो सिल दे। कल की पड़ी है।"

"मैंने ठेका ले रखा है क्या हर काम का।"

"क्या कहती है री ?"

"यही कि मैं चाकर नहीं हूं किसी की ! रईस होंगे अपने घर के।"

जयनाथ सुनता रहा। दर्द बढ़ता जा रहा था। उसने अनुभव किया जैसे ज्वर भी हो गया हो। वह रुपया हाथ में ले बाहर जाने को उठा, मन तभी कह उठा—लौटा दे इस रुपये को। रोटी के बिना बीत जायेगी तो दर्द से भी एक दिन में मरेगा नहीं।

और रुपया लौटाने का निश्चय कर वह जीने की ओर चला भी, किन्तु सीढ़ियों पर से नीचे नहीं जा सका। मन ने जो कहा था आत्मा ने उसका साथ नहीं दिया। बिना आत्मा की सहायता के तन काम करता भी नहीं, यह सिद्धांत भी है। मकानदार की नसाहत उसकी आत्मा से निकल न सकी। वह फिर लेट गया। कुछ सर्दी-सी महसस हुई। रुपया सामने आले में रख दिया और चादर उठाकर ओढ़ ली उसने।

ठण्ड बढ़ती जा रही थी।

मौसम में नहीं जय के शरीर में। खद्दर का चादरा। तीन तह हो गईं। सर्दी गई तो गर्मी आ गई। वह तपने लगा। तपता रहा। मन्द-मन्द कराहता भी रहा।

नोट आले में रखा था। तिरस्कारकी पोशाक में लिपटा हुआ। वह—वह—सोचता रहा—सब की अपनी-अपनी मर्जी है, जिसका विरोध करो, वही इस्तीफा मांगता है।

बुखार की तेजी बढ़ गई।

वह बड़बड़ाता रहा—"मै मरूंगा नहीं, सुना सनियां। मैं नहीं मरूंगा। तेरा बाबा मरा नहीं था न एक दिन में। मैं भी नही मरूंगा। (मैं इस्तीफा दे दूंगा)

मनुष्य के मस्तिष्क और आत्मा का सन्तुलन भी कोई चीज है ।" चीन ने जो कर दिया, वह ठीक है ।···मैं नहीं मानता ।···मैं कम्युनिस्ट बाद में, भारतीय पहले हूं । भारती ··· जिसकी संस्कृति शरणागत की रक्षा है । मैं ··· मैं ··· नहीं मैं पार्टी का आदमी संस्कृति—सभ्यता नहीं बेच सकता । जहां तर्क को स्थान नहीं ··· । मैं ··· काश आज सोनी होती ··· ।

"सोनी ! नहीं, नहीं, मैं इस्तीफा दे दूंगा ।"

दीवारें सुनती रहीं । ताक में रखा नोट देखता रहा—सोचता रहा—यह सब मेरी कुटिल तन्द्रा का नतीजा है ।

तीन

दिन ढल गया था । सांझ की लालिमा ढले एक घंटा हो गया तो कुमुद ऊपर छत पर आई । जय के कमरे का दरवाजा खुला था और कमरे में अंधेरा । वह देखती रही । चारों तरफ ।

"अजीब आदमी है । अंधेरे में पड़ा है । बत्ती तक नहीं जलाई गई ।" भीतर हाथ कर उसने बत्ती जला दी ।

वह खाट पर लेटा पसीने में तर । तपा-सा ।

"पास जाकर वह खड़ी हो गई । यह भी कोई सोने का वक्त है । क्या गंवार है ।" वह बुदबुदाई । माथे पर धीरे से जैसे ही हाथ रखा तैसे ही झट उठा लिया । दइया री दइया, ये तो बुखार में तप रहे हैं । और यह एक रुपये का नोट । आले में ही रखा है यह ! दवाई तक नहीं मंगाई गई ।"

"क्या है री !"

"देख तो ऊपर आकर। इनका शरीर तो बुखार में तप रहा है।"

"हे श्री राम, अभी आई बिटिया।"

जयनाथ जाग गया। सिर में दर्द अभी भी था।

"कब से है बुखार बेटा। बताया क्यों नहीं !"

"अभी। जरा थक गया था आज।"

"मैंने कोई ठेका ले रखा है क्या !"—कुमुद को याद आ गया। "बड़ा अड़ियल आदमी है। मैं तो समझ नहीं पाई इसे !" अम्मा ओ अम्मा। उसकी जबान से निकला।

"पर तुझे बताना तो था। मैं दवा मंगा देती। पैसे पास न थे। तो दवा नहीं आ सकती थी क्या ! इतनी गिरी हुई तो नही मैं।"

"यह बात नहीं अम्मा जी, पर आपने कोई ठेका थोड़े ही ले रक्खा है।"

"चुप रे—"

"कुमुद का गात कांप उठा नोट उसकी निगाह में था।

"मां, किसी को भेज दवा मंगा दे। मैं चाय बनाती हूं।"

मां चली गई।

"कुमुद।"

"हां।,'

"मैं चाय नहीं पियूंगा !"

"क्यों !"

"मैं खुद बना नहीं सकता और ..."

"तुम समझते क्यों नहीं ! जब पूछा था मैंने तो क्यों कहा था—मुझे परेशान न करो—चाय की डिबिया कहाँ है !"

"है नहीं।"

कुमुद उठी।

कुमुद ने उठकर उसका हाथ झंझोड़ दिया। पसीने में कमीज तर थी झटका खाकर फट गई। जयनाथ ने उस पर कुछ कहना चाहा, तो कुमुद बोल उठी। मैं सी दूंगी !

"क्यों !"

"तुम्हारा सिर !"

जयनाथ चुप हो गया।

चाय पीते हुए कुमुद ने कहा—"एक बात मानोगे !"

"कहो।"

"कसम खाओ कि आगे से कभी मुझ से कुछ न छिपाओगे !"

कोई जवाब नहीं।

"खाते क्यों नहीं कसम ?"

"......"

"खाओ।"

"अच्छा तो खा ली।"

"मेरे सिर पर हाथ रख कर।"

"अच्छा-अच्छा, तू भी पी चाय।"

"पियूंगी क्यों नहीं। पर पैसे याद रखना। सुनो ! आज का खर्च-छः आने की चाय की डिबिया और दो आने की चीनी ?"

"चीनी तो होगी !"—जयनाथ ने संशोधन करना चाहा।

"खाक थी।"

जयनाथ हंस पड़ा। अच्छा आठ आने हुए। छः आने चीनी के और दो आने चाय के।

चार

अरुण जय से कहा रहा था—"एक और एक ग्यारह होते हैं—दो नहीं।"

"वह तो मैं जानता हूं। फिर भी कोई काम करने से पहले अगर सोच लिया जाये कि उसका अंजाम क्या होगा तो शायद...।"

"बको मत, यह बताओ कि तुम्हें चलना है या नहीं।"

"चलो?" जयनाथ अपने मित्र अरुण का आग्रह और हठ जानता था। बोला—"अच्छा हो या बुरा। यार को तो यार के हर काम में साथ देना पड़ता है।"

"नहीं—नहीं जय! इस कदर गलत काम कोई नहीं। वास्तव में बात यह है कि चाहता तो मैं खुद नहीं था कि उसके कामों में हस्तक्षेप करूं। परन्तु अब पानी सिर से ऊपर होने लगा है। मैं मजबूर हूं।"

"कोई बात नहीं, चलो।"

जयनाथ को अपने बढ़ते पांव को एकदम रोकना पड़ गया। अरुण ने पीछे से कमीज पकड़ कर खींचनी शुरू कर दी थी।

"वह जा रही है, इससे कुछ कहना तो अभी ही था पर नहीं, सबर करो और देखो कि वह कविता ही है या नहीं?

"लेकिन वह...वह कौन है जो उसके साथ है।"

जय ने देखा कविता ही थी।

जय और अरुण ने सुना। वे दोनों फुसफुसा रहे थे!

"एक बार मुड़कर भी नहीं देख सकतीं। मेरी बात तो सुनो?"

"जी, हम तो हजार बार मुड़कर देखें, हजूर हमारी नजरों की कद्र करें, तब न?"

"कद्र, तुम कहो तो कविता, एक बार को...नुमायश में रखवा दूं तुम्हारी नजरें। लेकिन एक बात सुनो।"

"क्यों?"

"तुम कहो तो चांद तोड़ कर ला दूं ।"

"चांद तारे मुझे तोड़कर नहीं मंगाने । सिर्फ यह जानना है कि क्या प्रोग्राम है आज ?" कविता ने कहा ।

"तुम्हें पता होगा ?"

'तुम भी तो कहो कुछ ?"

मेरी अपनी तो कोई राय नहीं, हां, तुम अगर चाहो, तो चलो सन्तान देख लें ?

कहां चल रही है ?

गोलचा में, स्कूटर...स्कूटर ।

"जी बाबू जी...बैठिए...।"

घर्र घर्र की आवाज,

समय चल रहा है—जैसे वह बोल रही हो ।

मजबूरियों की नकली सांसें जैसे कह रही हों, घर्र, घर्र,

कहां चलना है साहब ?

गोलचा ।—दोनों के देखते-देखते ही कविता उस आदमी के साथ स्कूटर में बैठ कर चल दी ।

जयनाथ ने अरुण की ओर देखा, "अब ?"

"पैसे हैं कुछ ?"

"नहीं तो ।"

"दस रुपये भी नहीं ?"

'नहीं ।"

"हो सकते हैं ?"

"शायद ।"

"तो करो कोशिश ?"

यहां नहीं हैं कमरे पर हैं ।

चलो जल्दी चलो ।

'और अगर वहीं सोच लेते इस बात को—?"

"यार,"

मगर नहीं—एक-एक ग्यारह होते हैं। जनाब फार्मूला सिद्धांतों और कहावतों के पीछे लाठी लिए फिरते हैं। जय ने व्यंग किया।

यार जल्दी कर सवा ग्यारह बज गए। १२ बजे गोलचा पर टिकिट लेने पहुंच जाना है।

और सिनेमा जाने से पहले वह घर की तरफ चल दिये।

जयनाथ और अरुण जब घर की सीढ़ियां चढ़ रहे थे तो कुमुद सामने आ गई "बुखार अभी ठीक से उतरा नहीं और उलटे लगे घूमने—चाय पियोगे ?"

"नहीं, जरा ऊपर आ।"

"क्या ?"

"जरूरी काम है।"

"अभी आई। अरुण भाई आज कई दिनों में आये ?"

'हां, हां, इसका यह सामान घर रखकर अभी आ। अम्मा कहां हैं !"

"बाजार गई हैं। मगर तुम्हें इन बातों से क्या ? तुम्हें तो जल्दी है, चलो ! जरूरी काम है न !"

जय हंसता हुआ सीढ़ियां चढ़ता रहा।

"कुमुद—।"

"आई—अभी आई—" कुमुद ने चाय दोनों प्यालों में बनाई और सोचा···"कमीज कितनी मैली हो गई है आज ? हजरत बदल भी नहीं सकते, धो भी नहीं सकते ? ऊपर से आफत तो यह कि किसी से कह भी नहीं सकते।"

"कुमुद जल्दी कर, वरना मैं जा रहा हूं।"

"हाय-हाय, आफत मचा रखी है। लो आई।"

जय ने चाय देखी तो बोला अरुण से—"मुर्गी अपनी जान से गई, मियाँ जी को स्वाद ही नहीं आया। क्यों अरुण जी, लीजिए चाय आई है।"

"भई जल्दी करो। देखो वह लाई है तो लो जल्दी से पियो न।"

"कहाँ जाना है ?" कुमुद ने पूछा।

"कहीं नहीं, एक जरूरी काम है।"

"अच्छा चले जाना। पर देखो, यह कपड़े जल्दी निकाल दो जरा। इतने मैले कपड़े पहन रखे हैं, लाज नहीं आती तुम्हें। क्या कहता होगा कोई !"

"धुले हुए नहीं और क्या। यही कहेगा। सो बात ठीक ही है।"

"झूठ। सन्दूक में रखी तो है कमीज और पेंट धुली हुई।"

"नहीं।"

"अगर हुई तो !"

"देखें।"

जय ने देखा वही कमीज जो कल सिलने का ठेका नहीं पा रही थी—एक पैंट की बगल में हाथ दिए सन्दूक में थी। साफ--चिट्ठी--बनी।

"तुमने धोए यह।"

"नहीं" कुमुद बोली।

"झूठ।"

"अच्छा धोये। हां बताओ तो सही, क्या काम था ?"

जय चुप हो गया। सम्पर्क कितना भी घनिष्ठ हो, मांगते समय मुंह बड़ी मुश्किल से खुलता है।

"बताओ न ?"

वह नहीं कह सका।

"बताओ न, पैसे चाहिएं कुछ ?"

"हां।"

"तो फिर इतने संकोची क्यों बने हो ? कितने ? दस रुपये काफी होंगे।'

"हां।"

"अभी लाई। तुम जरा कपड़े बदल लो।"

कुमुद ने लाकर दस रुपये जय के हाथ में रखे और बोली पहली तारीख के अभी पांच दिन हैं। काफी होंगे तुम्हें? हां, तुम्हें पांच और चाहिये थे आज। तो लो बाकी ये सन्दूक में रखे हैं। ले लेना। कपड़े नहीं बदले?

अरुण धीरे से बोला—जय १० मिनट हैं १२ बजने में।

"चलता हूं।"

चलने लगे वे लोग तो कुमुद बोली—ऐसा करना भाई—आज तुम्हें देर तो हो गई है, सो जहां जाना हो, सवारी में जाना। पैसे मैं दे दूंगी। नमस्कार।

पांच

गोलचा से पहला शो समाप्त हुआ। जय और अरुण दोनों पहले ही गेट के बाहर खड़े हो गए। ज्यों ही वे दोनों बाहर को चले, अरुण ने कहा—"नमस्ते कविता जी, कहिये यहां कैसे?"

"सिनेमा देखने आयी थी।"

"अकेली ही..."

"हां।"

"झूठ क्यों बोल रही हैं, वे साथ हैं तो कोई साहब?"

"कौन?"

"वे।" अरुण ने एक की ओर इशारा किया।

"वे मेरे साथ नहीं हैं।"

"जरा टिकट दिखलाइये अपना कौन सी सीट पर बैठी थीं?"

"एल--७ पर।"

"अच्छी बात है। आइये।"

अरुण कविता के पास से दूर जाकर खड़े हुए उन सज्जन की ओर चला और जाकर बोला—"यह कह रही हैं कि पिक्चर आप लोगों ने ढाई रुपये में देखी और मैं कह रहा हूं २) में देखी है। दिखलाइये तो टिकट जरा।"

उस व्यक्ति ने झट टिकट निकाल कर दे दिया। नम्बर था एल-८

'आइये कविता जी चलें।" अरुण ने कहा और पीछे की ओर मुड़कर जय को करीब बुला लिया। जय को देखते ही कविता के होश हवाश उड़ से गए। वह कांपने लगी।

अरुण ने स्कूटर को आवाज दी और उसमें जय तथा कविता को बिठा कर बोला—"जाइये।"

स्कूटर चल दिया तो जय ने कहना शुरू किया—यह क्या कर रही हो भाभी तुम, यदि नलिन को पता चल जाय तो?"

"कह दीजियेगा।"

"नहीं-नहीं! मेरा मतलब यह नहीं था। मैं तो सिर्फ इसलिए पूछ रहा था कि क्या यह उचित है?"

"देखिये जय जी, आप हमारे घरेलू मामलों में बिल्कुल दखल न दें तो बेहतर है। यह तो फिर मेरा निजी केस है।"

"पर भाभी नलिन मेरा ..."

"मित्र है। यही न? उनसे कह दीजियेगा कि मैं क्या कर रही हूं। बता दीजियेगा सब। फिर पछताओ तो ...।"

"भाभी! चाहता तो नहीं था, पर बताऊंगा आज। तुम्हें इस रूप में देखकर सिर्फ दिल को दुख पहुंचा बस। नलिन मेरा मित्र है, पर जब से तुमसे परिचय हुआ, इस दिल्ली में बहिन, मां, और हर रूप मे तुम्हें ही देखता आया। तुमने जो प्यार मुझे दिया, उसके एक एक घूंट को मैं जीवन भर तरसा था। लेकिन, आज जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही,

पर मेरे साथ तुम्हारा व्यवहार………अच्छा रोक दो सरदार जी, मैं यहीं उतरूंगा।"

जय स्कूटर से उतर कर जब चला गया तो कविता को याद आया कि उसके अन्तिम शब्दों में कितनी रुलाई आ गई थी। कितना उदास हो गया था।

उसकी खुद की भी आंखें भर आई थीं। ऊपर को देखती हुई बड़-बड़ाई---मेरे भाग में दुख ही दुख है तो सुख कहां से मिले ?"

स्कूटर चलता रहा। कविता सोचती रही। अतीत की गहराइयों में खोई रही।

"भाभी, ओ भाभी।"

"हाँ--हां, कहो क्या खुशी है बड़े खिल रहे हो ?"

"खिलूंगा नहीं तो क्या ? मुझे नौकरी मिल जो गई है। तुम्हारे जय के बुरे दिन अब दूर हो गये हैं।"

"तो मिठाई खिलाओ न।"

"चाहे जो खाओ। दिल्ली में तुम्हारे सिवा है ही कौन जिसे मैं अपना कहूं। पहली तनख्वाह तो तुम्हें ही लाकर दूंगा।"

"बड़े भक्त बन रहे हो।"

"नहीं भाभी, केवल श्रद्धालु।"

स्कूटर रुक गया था। सरदार कह रहा था---उतरना कहां है बहनजी।"

"ऐं···तेलीवाड़ा. बहादुरगढ़ रोड।"

जब स्कूटर से उतर कर चली तो वह बड़बड़ाई। क्या अच्छा होता कि अपने नलिन को भी समझ पाते जय।

छह

कम्युनिट पार्टी ने घोषणा कर दी कि तिब्बत के मामले में चीन का हस्तक्षेप सर्वदा जायज है और उसके ऊपर आलोचना करना तो दूर, भारतीय कम्युनिस्ट विवाद भी करना नहीं चाहते। उनकी गतिविधियों से यह भी स्पष्ट हो गया कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी वस्तुतः हर कदम पर रूस और चीन के साथ है।

अखबारों ने इस पर छींटाकशी की। लोगों में घर-घर चर्चा हुई। इस बात का तो स्पष्ट अर्थ है कि भारत में रहते हुए भी ये कम्युनिस्ट कम्युनिस्ट देशों के गीत गाते हैं।

जय कम्युनिस्ट पार्टी का सक्रिय सदस्य था। आज से तीन साल पहले जब उसने मार्क्स और मार्क्सवाद के साथ ही साथ साम्यवाद और उसके दृष्टिकोणों का अध्ययन किया तो वह अपने आप को न रोक सका। छः महीने का कार्य करने का रिकार्ड दिखा, वह पार्टी का सदस्य हो गया था। इस थोड़े से समय में ही उसने बड़ी लगन से काम किया था। मजदूरों और अन्य गरीबों में उसकी सेवाएं बड़ा मूल्य रखती थीं।

अन्य पार्टियों के युवा कार्यकर्ताओं से भी उसका परिचय था। सबके साथ वह प्रतिदिन सन्ध्या समय १-२ घन्टे रेस्टोरेंट में बैठकर चर्चा करता। उनके और अपने दृष्टिकोणों में परिवर्तन को परखता और वह तत्व निकालता जिनके आधार पर सच्चे अर्थों में गरीबों की सेवा की जा सकती थी।

आज जब रेस्टोरेंट में पहुंचा तो पहले से ही कुछ और युवा कार्यकर्ता बैंठे थे। एक थे जनसंघ के श्री अरुण और दूसरे कांग्रेस के श्री अभिनव और तीसरे कोई नए आदमी थे।

जाते ही श्री अभिनव ने उससे उस तीसरे व्यक्ति का परिचय कराया—"आप है मुरादाबाद की स्टूडेन्ट फेडरेशन के प्रेसिडेंट श्री रमेश वाजपेयी।"

हाथ मिलाते ही जय ने कहा—"मैं जयनाथ हूं। किसी संस्था का प्रसिडेंट या मंत्री नहीं। इसके लिए खेद है।"

सब लोग हंस पड़े।

अभिनव ने बैरे को बुलाकर चार चाय, आठ टोस्ट और एक टिक्की मक्खन का आर्डर दिया और बोले—"सुना जय तुमने, तुम्हारी पार्टी वाले खुले रूप से रूस-चीन का साथ दे रहे हैं।"

"किस मामले में।"

"तिब्बत के मामले में।"

"तुम्हारी क्या राय है?"

"किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का किसी को अधिकार नहीं।"

"लेकिन तिब्बत चीन का अंग है। स्वयं प्रधानमंत्री नेहरू स्वीकार करते हैं।" वाजपेयी ने कहा।

"तो क्या हुआ। शासन व्यवस्था तो उनकी अपनी निजी है।" अरुण बोल उठा।

"है सही, लेकिन यह चीन की इच्छा पर है कि वह उसे रहने दे या नहीं।"

"क्यों?"

"क्योंकि भारत उस पर से अपना अधिकार वापस ले चुका है।" वाजपेयी ने कहा।

"अधिकार वापस लेने का अर्थ आप क्या समझते हैं मिस्टर बाजपेयी?" अरुण को जोश आ गया।

"एक देश को यदि अपना न कहें तो उस पर क्या हर प्रकार के अन्याय और अत्याचार को भी उचित कहना होगा। जो मनुष्य मेरे आधीन नहीं, वह सुखी रहने का तो अधिकार रखता है। फिर साम्य-वाद का तो अर्थ ही मनुष्य को हर क्षेत्र में समानता दिलाना है। किसी देश को बर्बर कृत्यों से वशीभूत करना तो मार्क्स की थ्योरी में नहीं आया। हर देश को यदि स्वदेश मान लिया जाये तो ?"

"यह नहीं हो सकता।" वाजपेयी ने मेज पर हाथ पटक कर कहा।

"तो इसका मतलब यह हुआ कि चीन जो अमानवीय कृत्य तिब्बत में कर रहा हैं, आप उसका समर्थन करते हैं।"

"हां, दलाईलामा को शरण देकर भारत ने गलती की है।"

"क्यों ?"

"वह जो कुछ कर रहा है, वह यदि तिब्बत में रहकर करता तो कुछ बात भी थी।"

"लेकिन उसकी जान को वहां खतरा था। वह कल वाली घटना आपने सुनी होगी ?"

"सब गप्प है। जिसमें हिम्मत होती है वह खुद दुश्मनों का मुका-बला करता है। असलियत यह है कि तिब्बत की जनता स्वयं ही दलाईलामा के विरुद्ध है। फिर उसको शरण देना मूर्खता नहीं तो और क्या है।"

"माना कि तुम्हारी बात सही है बाजपेयी। पर अगर ऐसा है तो चीन को तिब्बत पर कब्जा करने के लिए यह शक्ति प्रयोग क्यों करना पड़ रहा है ?" जय ने पूछा।

"इसलिए कि वहां के बौद्ध उसका विरोध कर रहे हैं।"

"और वहाँ की अधिकांश जनता बौद्ध है !" जय ही फिर बोला।

"फिर आप यह किस आधार पर कह रहे हैं कि तिब्बती जनता दलाईलामा के विरुद्ध है।"

मिस्टर वाजपेयी को कुछ क्रोध आ गया—"तुम इतना भी नहीं समझते कि हर आदमी के पीछे कुछ न कुछ पक्षपाती होते हैं। दलाई लामा के भी हैं; पर इसका यह मतलब तो नहीं कि सारे बौद्ध उसके पक्ष में हैं।"

"गलत न समझो वाजपेयी। तिब्बत की जनता की दलाई-लामा पर पूर्ण निष्ठा है। यह एक प्रकट सत्य है। अब आप यह जरूर कह सकते हैं कि लामा के शासन में कमजोरियाँ हैं। वह बौद्ध मठाधीशों और अन्य कई प्रकार की कमजोरियों का शिकार हो रहा है। पर इसका मतलब यह नहीं कि दूसरा देश उसमें हस्तक्षेप करे। चीन को उसके साथ सद्भावनापूर्ण व्यवहार करना चाहिये था।" जय ने शांति से कहा।

"मुझे तो आपके कम्युनिस्ट होने में भी शक मालूम पड़ता है। मिस्टर जय। वरना यह जानते हुए भी कि अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में कम्युनिज्म हिंसा-अहिंसा का भेद नहीं करता, आप ऐसा न कहते।" वाजपेयी ने कहा।

बात जय के हृदय को बेधती चली गई। आज उसे अनुभव हुआ कि जिस मंदिर के भगवान के विषय में दीन-दरिद्रों, अनाथों और निस्सहायों का सहायक होने की बात कही जाती है, वह खुद करोड़ों मनुष्यों के हृदय का खून पीकर पवित्र होता है, असंख्य बलियों, आहुतियों से शृंगरित और पूजित होता है। वह कम्युनिज्म के प्रासाद द्वार पर जिन समाजवादी लोकतंत्री और मानवता-प्रेमी उपदेशों को पढ़, भीतर घुसा था, वे भ्रामक थे। समता--स्वतंत्रता और उच्चादेशों की जो ध्वनि उस समय उसके कानों में पड़ रही थी, वह दूर के गोलों की थी। वह चुप रह गया।

अभिनव ने कहा---"कम से कम आप सभ्यता का ध्यान तो रखें।" जय एक विख्यात कम्युनिस्ट है। यह बात सब जानते हैं। हाँ, तिब्बत

के मामले में आप यूं कहिये कि चीन का मामला होने के नाते आप इसे स्वीकार नहीं कर सकते।"

अरुण सक्रोध बोला—"मेरा और जय का यहीं गतिरोध है, लेकिन इसके बावजूद भी अगर कोई कम्युनिस्ट होने पर शक करे तो मैं उसे मूर्ख कहूंगा।"

"मिस्टर—" वाजपेयी ने बाहें सूत लीं। अरुण उठता हुआ बोला: मैं जानता हूं तुम्हारी औकात को। मगर यह भूलो मत कि मैं भी यही सीखता हूं। बाहें सूतने में डरूंगा नहीं।"

जय दोनों के बीच में आ गया—सुनो भई, तुम दोनों की बातें अक्षरशः सत्य हैं। मगर आपसी विद्वेष से लाभ। बैठिए बाजपेयी जी, आप भी अरुण जी। मैं तो वस्तुतः स्वयं इस संशय में हूं कि मैं हूं तो क्या ?

जब तक आपका संशय दूर न हो पार्टी से इस्तीफा दे दीजिये; क्योंकि यह उच्छृंखलता सह्य नहीं होगी। मैं आज ही इसकी शिकायत करूंगा।"

"शौक से। मगर चाय तो पीजिये ।"

थोड़ी देर बाद जय यहां से चल दिया तो पार्टी के दफ्तर में जाने के बजाय सीधा घर की तरफ चला। रास्ते में नलिन मिल गया। वह उससे बात तो करना नहीं चाहता था पर जब रोक कर उससे पूछा—"कहाँ से ?" वह चुप न रह सका—"हिमाचल रेस्टोरेंट से।"

"अच्छा और कोई बात ?"

"और है तो।"

"क्या है ?"

"भाभी को आजकल लोगों के साथ सिनेमा थियेटर आदि देखने का बहुत शौक हो लगा है।"

"कौन सी भाभी को।"

"कविता को "

"जय।"

"यह भी सुना है कि दो चार बड़े आदमियों के घर भी अकेली जाती हैं।"

"मैं कहता हूं जय, बन्द करो यह बकवास !"

"मुझे जो कहना था, कह दिया। तुम्हारी इच्छा है अब जो चाहो सो करो।"

"चल घर चल। अभी हो जायेंगी सारी बातें।"

"नहीं, मैं घर नहीं जाऊंगा। नमस्ते।"

घर जब वह पहुंचा तो भूखा था ही, खाना चाहता तो आज वह होटल पर खा सकता था। तनख्वाह मिली थी। किन्तु घर पर कुमुद ने बनाया होगा, वह जानता था।

दरवाजा खोलते ही नीचे से कुमुद ने पूछा---"आ गए इतनी रात गए घूमकर। कहाँ-कहां घूमते हो रोज ?"

कोई जवाब दिए बिना जय ने बत्ती जलाई। घर साफ धुला-घुलाया पड़ा था। कटोरदान देखा तो पराँवठे और सब्जी तैयार रखी थी। वह एक दो क्षण हंसा और फिर खाने लगा।

"मुझे भी खिलाओगे, क्या बनाया है ?" फुसफुसाहट सुनाई दी।

वह हंसता रहा।

कुमुद सामने आकर बैठ गई और खाने लगी—"बोलते क्यों नहीं ?"

"खाकर बोलूंगा।"

"और अगर मैं न बनाती तो ?"

"यह तेरे बस की बात नहीं।"

"क्यों नहीं है।" टुकड़ा उसके मुंह में देती हुई वह बोली—"फिर इतना परेशान क्यों करते हो ?"

बात टालते हुए जय ने कहा----"तुम्हारे वे बीस रुपये देने हैं कुमुद आज। फिर याद रहे या न रहे और रहे भी तो पैसे नहीं होंगे।"

"पैसे नहीं, पहले मेरी बात का जवाब दो ?"

"दे रहा हूं कुमुद। मैं पूरी कोशिश करता रहता हूं कि तुम्हें खुश रखूं। परन्तु रख नहीं पाता। मैं कुछ खुद ज्यादा परेशान हूं। लो अपने रुपये।"

"मैंने लेने के लिए नहीं दिये थे।"

"फिर दे देना।"

"नहीं-नहीं, जाओ अब जाकर सो जाओ।"

"और आज मैं तुम्हारे ही पास सोऊं तो ?" वह फिर बोली।

"नहीं, एक ही खाट है यहाँ।"

"तो तुम्हारी खाट पर ही।" कुमुद कहते कहते रुकी।

"कुमुद बको मत। जाओ अपनी खाट पर सोओ। अम्मा जाग, गई।"

"जागने दो। मुझे अपनी खाट पर सोना नहीं है और न अम्मा का डर ही है।"

"लेकिन।"

"चुप बैठे रहो।"

जय खाट पर लेटा तो साढ़े ग्यारह हो गये थे। कुमुद ने एक बार बत्ती को गौर से देखा। कान लगाकर सुना और बत्ती बुझाकर चुपचाप जय की खाट पर आ लेटी। जय ने कहा---तुम ठीक नहीं कर रही हो कुमुद।"

"धकेल दो तो।" कुमुद हंस पड़ी और झट ओठों पर हाथ रख दिये उसके-- "इतनी नफरत है मुझसे कि तुम्हारे सीने से लगकर सो भी नहीं सकती हूं।"

"सो जाओ फिर।"

जय ने करवट बदल ली।

कुमुद ने उसके हृदय पर दोनों हथेलियां रख दीं।

"इधर मुंह करो।"

"नहीं, सोने दो।"

"अजीब आदमी हो। क्यों घबरा रहे हो इतना?"

"घबरा रहा हूं, सो बात नहीं।"

"तो फिर सो जाओ।"

जय जागता ही रहा। सोचता रहा—अजीब लड़की है यह। कहीं किसी को पता चल गया तो?

कुमुद उसकी देहराशि से खेलती रही। पर्याप्त प्रयत्न करती रही कि वह भी खेले, परन्तु, अन्ततः जय, अजीत रहा। वह निष्फल हो, ऊंघने लगी। जय सोचता रहा----अजीब पहली है यह भी। न तो मैं धक्का दे सकता हूं। न ही आलिंगनबद्ध कर सकता हूं।" तभी उसे ध्यान आया। पार्टी में एक सदस्य ने एक दिन उससे कहा था----लड़की को इतना दूर मत रखो। जरा पास आने दो। तुम कैसे कम्युनिस्ट हो? इस बेकार के आदर्शवाद में मत पड़ो। हमें कितनी जगहों पर काम करना पड़ता है? रात को किसी मोहिनी का साथ भी तो चाहिए ही।"

तब जय ने कहा था—"पर चरित्रहीनता को पार्टी सहन करेगी?"

पार्टी को क्रियात्मक कार्य चाहिए। चरित्र के पहलू पर सोचने का न उसे समय है न आवश्यकता है। जय ने करवट बदलनी चाही तो महसूस किया कि कुमुद सो गई है। उसने भी आंखें बन्द करलीं।

रात को कई बार वह चौंका। कुमद उसके वक्ष से जब भी हटी, मचली, फिर सिर रखा और सोई।

"ठीक ३ बजे जय ने उसे उठाया।" कुमुद बोली।

"सोने दो न।"

"चार बजे गये।"

"तो क्या हुआ?'

"एक घंटे में अम्मा उठ बैठेगी। जाकर नीचे सो जा। मुझे भी मरवाएगी क्या?"

"हां" कुमुद आंखें मींचे ही हंस पड़ी--"मैं भी तो मारी जाऊंगी।"

कुमुद चली गई तो जय ने अपनी अलमारी से यशपाल का "दादा कामरेड' उपन्यास निकाला और पढ़ने लगा। उसके मस्तिष्क में एक उथल पुथल-सी मच गई। उसका हृदय अलग होने लगा था—पार्टी से भी और उसके सिद्धांतों से भी।

सात

कविता जब से अनिल से ब्याही गई थी, तभी से वह जय को जानती थी। अनिल शराबी, जुआरी और वेश्यागामी होते हुए भी जय का मित्र था। उस जय का जिसमें जहां तक परिचय था, इस प्रकार का कोई दुर्गुण न था। ब्याह से लेकर अब तक कविता के जीवन के दो ही मुख्य आधार थे—अनिल की अधिकारोचित नृशंसता और जय का सम्मानीय स्नेह।

जब उस दिन कवित जय से यह कहकर चली गई कि उसके निजी मामलों में हस्तक्षेप करने का उसे कोई अधिकार नहीं है, तो भी पन्द्रह दिन तक उसने उसकी प्रतीक्षा की। उसे विश्वास था कि वह आयेगा—सब कुछ भूलकर एक दिन वह फिर अपनी भाभी के आँचल में आकर मुंह छिपायेगा। सारी वेदनाओं को भूल जाने की कोशिश करता हुआ वह स्वयं में बह जायेगा, सो जायेगा।

परन्तु वह नहीं आया। कविता का हृदय सिसक उठा। जय की दूरी उसे असह्य हो उठी। बहुत चाहा उसने कि जो असंभव है, उसकी कल्पना ही न करे। पर वह सफलीभूत न हुई।

इसी उधेड़बुन में एक दिन वह उसके कमरे पर जा पहुंची। बाहर से ताला बन्द था। कुमुद उससे परिचित थी। इसलिए उसे बिठाकर

बोली---"कैसे याद कर लिया आज ? कोई खास बात है क्या ?"

"नहीं तो तुम्हारे जय जी तो पन्द्रह दिन से गए ही नहीं घर। सोचा आज चलकर मैं ही उनके दर्शन करूं।"

"तुम्हारे घर नहीं गए वे ? ताज्जुब है। कुछ झगड़ा हुआ क्या ?"

"थोड़ा सा। केवल वह भी आपसी है।"

"मत बताओ। पर राजीनामे की तो उम्मीद है ?"

"वह पूरी है।"

"चलो तो उनका ताला खोल देती हूं ऊपर बैठना।"

"कब तक आयेंगे ?"

"करीब दस-बारह बजे तक ?"

कविता यह जानती थी कि वह बहुत देर से आयेगा, इसीलिए वह आठ बजे आई थी। परन्तु वह दो तीन घन्टे और·········

खैर, वह ऊपर जाकर बैठ गई। कुमुद उसके साथ थी। पूछा उसने—"खाना कहां खाते हैं आजकल, होटल पर या घर में ?"

"घर पर ही।" कुमुद बोली।

"तब क्या आकर बनायेंगे !"

"हां।"

"मैं ही बनाये लेती हूं।"

"बना लो।"

कविता खाना बनाने लगी। कुमुद बैठी साढ़े नौ बजे तक बातें करती रही। उसके बाद नीचे चली गई।

कविता ने सुना। उसकी मां पूछ रही थी—

"कौन है यह रानी।"

"उनके मित्र की पत्नी है।"

"कौन मित्र है ?"

"एक शराबी, जुआरी।"

"क्यों आई है यहाँ यह ?"

'मुझे पता नहीं।''

''दस बजे अकेली इस घरमें बैठी है, कुछ भली मालूम नहीं होती। दोस्त की ही बीबी तो है, उसकी तो नहीं है।''

''है तो।'' कुमुद की आवाज आई।

कविता के रोम-रोम में आग सुलग उठी। मगर फिर भी आज उसने जो टानी थी, वह तो पूरा करके ही जाना था।

ग्यारह बज गए, लेकिन जय न आया। वह खाना बनाकर लेट गई। कुछ देर में जागी तो नीचे से फुसफुसाहट की आवाज फिर आई—''वह अभी नहीं गई क्या कुमुद ?''

''नहीं।''

'कलमुंही कहीं की। रात काली यहीं करेगी क्या ?''

''शायद।''

कविता सो न सकी। आँखें मींचे पड़ी रही। साढ़े ग्यारह बजे के लगभग जय घर में घुसा। बत्ती जल रही थी। देखा खाट पर कोई लेटी हुई है। कुमुद ही होगी, सोचा उसने।

''कुमुद, जा साढ़े ग्यारह बज गए। नीचे जाकर सो।''

वह उठी नहीं तो झकझोरा उसने, ''कुमुद उठ री।'' कविता आंखें मलती उठ बैठी। वह करवट लिए लेट रही थी। इसलिए जय देख न सका था। अब जो देखा तो साँप काट गया--''तुम ? क्यों आईं ?'' एक साथ उसने पूछा।

''तुम क्यों नहीं आये !''

''मरजी मेरी।''

''मेरी भी मरजी।''

''देखो भाभी, जिस तरह तुम अपने घर के मामलों में दखलन्दाजी बर्दाश्त नहीं कर सकतीं, वैसे ही मेरे कार्यो में भी न कीजियेगा।''

''मगर मैंने दखल क्या दिया है सुनूं तो जरा।''

''घर क्यों आईं तुम ?''

"तुमसे मिलने के लिये।"

"क्यों, कोई मिला नहीं आज ?"

"जय !"

"भाभी उठो, और अपने घर जाओ। मेरे ऐसे भाग ही नहीं जो तुम्हारे कदमों का स्वागत कर सकूं। तुम्हारी राह में पलकों की सेज बिछाऊं।"

"पहले तो बिछाते थे।"

"हाँ, लेकिन तब पता नहीं था कि तुम इतनी गिरी हुई हो।"

कविता की आंखें भर आई। आंसुओं को पीते हुए कहा उसने—"तो तुम्हें उस कविता से मतलब था, जो उठी हुई थी। गिरी हुई से नहीं रहा।"

"हां, उसी से था जो चरित्र के उच्च शिखर पर थी।"

कविता उठ खड़ी हुई—"क्या किसी प्रकार भी मैं क्षमा योग्य नहीं ?"

"नहीं।"

"मैं हाथ जोड़ती हूं। तुम मान जाओ।"

"नहीं,-नहीं-नहीं। अगर तुम उन गलत रास्तों को छोड़ दो तो शायद मुमकिन हो।"

कविता चुप हो गई।

जय ने कहा--"नहीं छोड़ सकतीं क्या ? तब फिर क्यों आई हो। जाओ। जाओ और उनके ही ओठों की शराब पियो जो खुशी से पिलाते हैं। उनके साथ ही रास रचाओ। मुझसे तुम्हारा मतलब !"

कविता अश्रु भीगी उठ खड़ी हुई। बोली—"माना जय, मैं गलत हूं। पतिता हूं। व्यभिचारिणी हूं। पर तुम्हारी भाभी थी। हृदय से। खून के रिश्ते से नहीं। परन्तु...।" काश ! तुम्हारी कोई बहिन होती और इसी प्रकार वह पतिता हो जाती तो क्या ?...।" आगे वह कुछ कह न सकी और कंपकंपाती हुई कमरा छोड़ कर चली गयी। जय

देखता रह गया। उसने जो चांटा कविता को मारा था, उसे लगा जैसे वह उसे बाकायदा लौटा गई है।

आठ

कविता की आंखों का पानी सूख गया। जिन्दगी क्या है, यह समझने की कोशिश जिसने भी की, वह ही इसे गंवा बैठा। इसके विपरीत जो केवल यह सोचकर कि जिन्दगी जीने के लिये है, उसकी राहों पर चलता रहा, वह जिया और आराम से जिया।

पर हां,

गंवाने का मतलब बरबाद करने से नहीं। हो सकता है कि ऐसा समझने वाले किसी विचार की जिंदगी इतनी लम्बी हो युग-युग तक का क्रम उसे मार सकने में असमर्थ हो जाये।

पर प्रायः यह होता नहीं। अक्सर जो जिन्दगी की अवहेलना करते हैं। उनके जीवन में जितनी शांति रहती है, उतनी ही उनके जीवन में अशांति, जिन्हें सार समझने का मोह है।

नलिन जिन्दगी जीने वालों में था और कविता उसका सार समझने वालों में। सिवा शराब, जुए और ऐश की चाह के नलिन को और कुछ जिन्दगी में न दीखा और...। कविता जिन्दगी में सकुचाई और असलियत के अलावा कुछ खोजा ही नहीं उसने कभी।

इस तरह की जिन्दगी नलिन की थी। उस दिन रात के १२ बजे जय के शब्दों से लांछित हो कविता लौटी तो आते ही नलिन ने पूछा—"जय मिला था तुम्हें कहीं ?"

"कुछ याद नहीं।"

"उसके सामने किसी दिन सिनेमा गई थीं ?"

"नहीं।"

"ठीक बोलो।"

"गई थी।"

नलिन नशे में तो था ही ग्रौर भी नशे में हो गया। कमर में उसकी घूंसा जड़ दिया उसने—"हजार मर्तबा कह दिया कमबख्त, मैं क्या कर रहा हूं ग्रौर तू किस तरह से जी रही है, यह कुछ भी जय को पता नहीं चलना चाहिए, पर नहीं मानती है कमबख्त। क्यों नहीं ग्रांख बचा गई थी उससे।"

"ग्रब से खयाल रखूंगी।" घूंसा खाकर भी कविता बोली।

"जा, सो रह।" रुखाई से नलिन ने कहा।

कविता ग्रपने बिस्तर पर जा पड़ी तो बाहर से उसे फिर नलिन की ग्रावाज ग्राई, "ग्ररुण ने जो ५० रुपये देने को कहा था, दिए ग्राज उसने।"

"हां, दिये।"

"ला तो, दे दे।"

"ले जाग्रो।" कविता ने कहा।

नलिन ग्राकर जब रुपये ले गया, तो कविता ने कुछ सोचना शुरू किया—"क्या करूं, स्वयं ग्रपनी जिन्दगी इस कदर बोझ बन जायेगी, कभी सपने में भी नहीं सोचा था।"

उसे ध्यान ग्राया, पहली बार जब वह सिनेमा देखने गई थी तब ... "भाभी तुम मेरे साथ सिनेमा चलोगी ?" ग्ररुण ने कहा था।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"इच्छा नहीं है मेरी।"

"लेकिन नलिन की तो है।"

"तो वे चले जायेंगे।"

"अपने नहीं, तुम्हारे बारे में।"

"क्यों ?"

"मरजी उनकी।"

"मेरी भी तो मरजी है ?" कविता बोली। तभी नलिन बोल पड़ा—

"नहीं-नहीं, नहीं। इस घर में एक की मर्जी चलेगी मेरी। तुझे सिनेमा देखने अरुण के साथ जाना होगा। मैं एक काम से जा रहा हूं।" नलिन ने कहा और बाहर चला गया था।

जाते जाते फिर कहा उसने—"यह जो कुछ कहे मान लेना कविता, यह मेरी आज्ञा है।"

जब दोनों बैठे सिनेमा देख रहे थे तो अचानक अरुण ने कविता की कमर में हाथ डाल दिया। कविता का रोम-रोम जल उठा—"सीधे होकर बैठिए।" उसने कहा।

"क्यों ?" अरुण फुसफुसाया।

"मैं जो कह रही हूं।"

"लेकिन मेरी ऐसी इच्छा नहीं है।"

"पर चलेगी तो मेरी इच्छा।"

"क्या चलेगी ?" नलिन ने पूछा था।

"जरूरत नहीं" कविता ने कहा और हाल से उठकर चली आई थी। उस दिन भी वह बुरी तरह पिटी थी। साफ-साफ नलिन ने कहा "मेरे साथ तू सब ताल्लुक खत्म करके कहीं भी चली जा या फिर वह कर, जो करने के लिए मैं तुझसे कह रहा हूं।"

कविता की आंखों में आंसू आ गए थे। पोंछते हुए वह बड़बड़ा उठी—"पति ! क्या इसी का नाम पति है। इसीलिए हमारे शास्त्रों ने उसके परमेश्वर होने का दावा किया है। यही पूजा और अभिलाषा का मन्दिर...उसकी मूरत...भगवान !"

"यह है आदमी। घिनौनी वीभत्स तस्वीर में जैसे जान डाल दी

गई है। नलिन की तरफ़ स हर अधिकार उसे मिला था, जब दूसरे को उस अधिकार का उपयोग करते देखा तो जय को बीच में ले आया। खुद हजार बुराइयों, गुनाहों और ऐशों का विकार होते हुए भी कोई आदमी दूसरे में वे ही बुराइयां देखकर चिड़चिडा हो जाता है। या यूं कहा जाय कि अपनी कमी में हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकता जो, भी हो।"

कविता की आखों में पानी बह रहा था। वह रोती रही। बिस्तर पर बिखरते हुए उसके अधरों के शब्द थे।—"जय···जय···जय···।"

वही जय जिससे उसने कह दिया था कि उसके निजी मामलों में हस्तक्षेप का अधिकारी वह नहीं।

"वही जय—जो उसकी सांसों के उच्चतम आदर्शों के प्रतीक एक भाग का परिचित था। जिसे पाकर पति की ताडना निजी जीवन की कलुष बिडम्बना और अभौतिकताओं को छिपा सा अनुभव किए रहती थी वह।

उससे वह दूर हो गई। घर से ऊब और दूब से हरियाली का जो स्नेह हैं, बन्धन है और नाता है, वही जिससे वह अनुभव कर रही थी, वह उसके आंगन से चला गया। धरती जैसे सूख गई। दूब को ज्यों लू लग गई। दोनों ही जैसे किसी जलबिन्दु के वियोग में एक दूसरे को गलत समझ बैठे। परन्तु···।

जय कविता का लाड़ला देवर। कविता जय की पूज्य भाभी थी।

नौ

जय को अचानक ही रवीन्द्र का खत मिला। गांव में विषूचिका का भीषण प्रकोप हो रहा था। पार्टी दफ्तर को सूचना दे और अपने

आफिस में लीव एप्लीकेशन फार्म भरकर वह सब सामान बांधकर चलने को तैयार हो गया। मासिक वेतन में से इस समय उसके पास सौ रुपये बचे थे। वह उसे कुछ कम महसूस हुए।

जय और नलिन बैठे बात करते रहे। कविता चाय बनाकर ले आयी। चाय ले अनिल बोला, "हां, तो क्या कह रहीं थीं कविता ?" जय तुमसे नाराज है, क्यों भई ?"

"नहीं तो।"

"कहा तो था कुछ मुझसे तूने ?"

"वैसे ही कुछ कह दिया होगा ?"

"तो फ़िर क्यों रो रही थी। कहती थी, न जाने क्यों मुझ से मुंह फेर बैठा है।"

"सो बात तो नहीं। लो देखो में आ गया।"

"मेरे पास थोड़े ही। इनके पास आये हो।" कविता बोली।

"अब यह तुम्हारे समझने की बात है, जो भी समझो।" जय ने कहा।

"इसमें समझना क्या है। मेरे पास आते तो चाय रसोई में बैठकर न पीते।"

"तो चलो, अब पी लेता हूं।"

"चलो।"

"और मैं...।"

"अकेले पियो" कविता ने नलिन से कहा और जय का हाथ पकड़ कर भीतर ले चली।

आमने-सामने बैठकर जय की आंखें ऊपर न उठीं। कविता ने कहा, "बोलोगे नहीं क्या ?"

कबिता ने उसकी ठोड़ी में हाथ डाल दिया, "माफ करदो। आखिर मैं तुम्हारी कुछ तो हूं ?"

जय ने गर्दन उठाकर देखा। कविता की आंखों में आसू छलछला

आये थे ।

"भाभी ?' वह अपने को न रोक सका—"मैं तुमसे कैसे दूर रह सकता हूं ।"

कविता को जैसे स्वर्ग मिल गया । उसके ललाट को चूम कर पूछा, "क्यों जा रहे हो गांव ?'

"तुम्हें मतलब ।"

"जय, मुझे तुम्हारे हर अच्छे-बुरे काम से मतलब है ।"

"हर अच्छे बुरे से ?"

"हां ।"

जय ने उसकी आंखों में देखा ।

देखता रहा । कुछ देर चुप रह कर बोला—"तो सुनो । गांव में बीमारी फैल रही है सो जा रहा हूं ।"

"क्या बीमारी है ?"

"हैजा ।"

"मत जाओ ।"

"यह असंभव है ।"

"तब मैं भी साथ चलूंगी ।"

"यह भी असंभव ।"

"क्यों है ?"

"मैं कहता हूं ।"

"अच्छा एक बात तो मानो ।"

"क्या ?"

"साथ कुछ पैसे लेते जाओ ।"

"हैं तुम्हारे पास ?"

"बताओ कितने चाहियें ।"

"जितने भी दे सको । मैं तो एक हजार मांगता हूं । होंगे इतने ।"

"होंगे ।"

"तो मेरी अटैंची में रख दो भीतर जाकर। मगर मिलगे जरा देर से ?"

इसके बाद बहुत देर तक जय और कविता शांत मन से एक दूसरे को देखते बैठे रहे। अन्त में मौन भंग करते हुए कविता ने ही कहा—जय, ऐसा नहीं कर सकते कि तुम मेरे साथ जो व्यवहार करो मैं उसी पर विचार करूं और मैं तुमसे जो व्यवहार करूं, तुम केवल उससे संबंध रखो। अन्य किसी बात से नहीं।"

फिर कुछ रुक कर वह बोली—"हो सकता है, तुम्हारी विचारधारा के अनुसार मैं व्यभिचारिणी ही होऊं। किन्तु तुम्हारे साथ जब तक व्यभिचार नहीं करती, तुम उस पर विचार न करो, मैं केवल यही एक प्रार्थना करतीं हूं। सोचो, समझो और मुझ जैसी पतिता को अपने स्नेह से वंचित न करो जय, उठे हुए को सब गले लगाते हैं, गिरे हुए को सीने से लगाने वाला क्या कोई नहीं हो सकता। उससे संवेदना और सहृदयता का व्यवहार करना भी क्या मनुष्य को पतित करता है।" कहते कहते कविता का गला भर आया।

जय ने केवल इतना ही कहा—"भाभी ! मैं क्षमा चाहता हूं। तुम कुछ भी हो, मेरी भाभी हो।"

और जब जय बाहर चला, कविता ने अपने भगवान प्रसाद उसे खिलाकर आशीर्वाद दिया--"जाओ। दुर्गा मइया तुम्हारी रक्षा करेंगी।"

नलिन ने कहा—"खत डालते रहना। स्टेशन पर चलूं क्या ?"

"नहीं— मैं चला जाऊंगा।"

"मै चलूं—" कविता ने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यूं ही।"

"ले जाओ, उदास है यहां भी। छोड़ आयेगी तुम्हें। तुम्हारा भी जी इतना न दुखेगा।"

"तो चलो भाभी।"

अरुण स्टेशन पर पहुंच चुका था। कविता ने फर्स्ट क्लास की दो टिकट जय के लाख मना करने पर भी ले ही ली थीं। अरुण थर्ड क्लास में बैठा था।

उसे देखकर जय ने कहा—'चलो अरुण फर्स्ट क्लास के टिकट हैं।'

"क्यों, मैं तो टिकिट ले चुका हूं।"

"तो क्या हुआ। मैं जब लौटूंगी तो उन्हें लौटाती जाऊंगी।"

"लेकिन...।"

"इस समय आप लोग सफर मेरी मौजूदगी में कर रहे हैं। इसलिए मेरी इच्छा से करिये, आगे आप लोगों की इच्छा है। जो चाहें करें।" कविता बोली।

"आप—?"

"भाभी है मेरी...कविता..." जय बोला।

"नमस्ते" करुण ने दोनों हाथ जोड़ दिए।

गाड़ी जब चली तो कविता ने कहा—'खत न लिखा तो अच्छा न होगा। मैं बहुत दुखी होऊंगी। और हां, तुम्हारे आने तक मैं रोज एक पण्डित जिमाऊंगी।"

"बेकार का खर्च है भाभी यह तो।"

"तुम्हें क्या पता इसके महत्व का।"

हाथ हिलते रहे। एक्सप्रेस चलती रही। अन्त में हाथ हिलने भी बन्द हुए और दीखने भी। गाड़ी रफ्तार पकड़ चुकी थी।

दस

मोग्रा बरेली जिले का गांव था। छोटी सी आठ नौ सौ की

आबादी और वह भी गरीब। रोज एक दो आदमी हैजे से मर रहे थे और इलाज की कमी में उनको रोकने वाला कोई नहीं था।

जैसा की भारत के गांवों में प्रातः होता है, वैसा ही यहां भी था। मौत पागल होकर नाचने लगी थी। लोग भयाक्रान्त थे, उसके पद तलों में आ आकर मर रहे थे, पर वह थी कि रुकती ही न थी। आखिर रुके भी क्यों ? यह भारत का गांव था।। महामारियों का क्रीड़ा-केन्द्र !

एक—दो—तीन—दस।

आदमी की लाश आदमी उठाते हैं यह सही हैं, लेकिन यहां आदमी की लाश जैसे आदमियों को निमंत्रण देती जाती थी—आओ मेरे जैसे बनो। मेरी ही भांति लोगों के सिरपर बैठ परलोक की सैर को चलो।''

और लाश, लाश को खींचे लिए जा रही थी-मंत्रमुग्ध सी।

आदमी बेबस था। रुआंसा था।

भाग्य प्रबल था। अट्टहास कर रहा था।

रवीन्द्र जानता था कि इस ऐसे समय में जय ही है जो लोगों को संभाल सकता है—इस ताण्डव को रोक सकती है।

इसीलिए रबीन्द्र ने जय को खबर दी थी। जय पहुंच गया तो उसके साथ ही साथ सारे गांव ने सन्तोष की साँस ली। जय तन मन से जुट गया। करुण ने एक कमरा खाली कराकर उसमें अपना सामान जमाया और लग गया बीमारों की देखरेख में।

शाम को जब जय और करुण साथ-साथ घूमने जा रहे थे तो एक बुढ़िया भागती हुई आकर उसके पैरों पर गिर गई—"बचाओ भइया, जवान लड़का है मेरा। मरा जा रहा है।"

"कौन रिजकू ?"

"हां बेटा।"

"चलो।"

दोनों जब वहां पहुंचे तो रिजकू की बहुत हालत खराब थी।

करुण ने उसे फौरन दवा दी और कहा बुढ़िया से—"क्यों कर दी इतनी देर ? जब पता है कि मैं गांव में हूं तो क्यों नहीं फौरन खबर दी ?"

"मैं कुछ इन दवाइयों पर यकीन नहीं करती भइया !"

"क्यों ?"

"भगत कहता है।"

"कौन भगत ?"

"जगमोहन।"

"अच्छा पूछूंगा उससे।"

रिजकू बड़बड़ाया—"बेटा, कमली, कहां हो तुम आओ बेटा।"

दोनों बच्चे उसके पास पहुंच गए। जय ने कहा—'धीरज धरो। रिजकू तुम अच्छे हो जाओगे।"

"नहीं भइया। तुम कित्ती भी कोशिश करो। यह जगमोहना गांव को लेकर ही डूबेगा। मैं अब······।"

उसकी सांस उखड़ गई।

जय ने उसकी गरदन अपनी रान पर रखली। रिजकू ने हसरत भरी निगाहों से दोनों बच्चों की ओर देखा और······जय की आंखें बह चलीं।

जगमोहम की भ्रान्त धारणाएं जयनाथ का रास्ता रोके खड़ी थीं। आदमी कुत्ते की मौत मर रहा था।

जय ने उसके ऊपर कपड़ा डाला और दोनों हाथों से उसके बच्चों को गोदी में उठा कर बोला—"डरो मत बच्चो। तुम्हारा बापू ठीक हो जायेगा।"

बाहर बुढ़िया रो रही थी। चिल्ला रही थी—"हाय जगमोहना, तू मर जाइयो रे ? तेरा सत्यानाश हो रे ! मेरे लाल को खा गया तू। अब किसके आसरे जियेंगे मेरे बच्चे। हाय रिजकू।"

जय जल्दी से करुण का हाथ पकड़ कर घर से निकल गया। सड़क

पर जा करुण जय से बोला, "यहां भी राजनीति चल रही है जय। सब अपने-अपने स्वार्थों से प्रेरित हैं। सब का नारा समाज सुधार है और सब सत्ता के भूखे हैं।"

"देश की राजनीति में प्रत्येक दल निज हित को ध्यान में रखकर जनकार्य करता है और चाहता है कि जनता पर उसके दल का प्रभाव रहे। किसी को इस बात की चिन्ता नहीं कि उससे कितनों का गला घुटता है।"

"ये भगत और झाड़ने वाले, और फूंक-फूंककर रोगों को नष्ट करने वाले हमारा रास्ता इसलिए रोक रहे हैं कि डाक्टरों की बन आयी तो उनका कौन भोग भरेगा।"

दोनों साथियों ने क्षण भर के लिए एक दूसरे की ओर देखा और फिर जय ने कहा, 'करुण, हम लोगों के कुछ अपने सिद्धांत हैं। देश के विषय में कुछ अपनी मान्यता हैं क्या वे पूर्ण होंगी। मेरे विचार से तो उनका गला घुटेगा। कांग्रेस सरकार की केरल वाली बात को लो, उसने केरल में हस्तक्षेप किया था, यह क्या केवल एक सत्ता प्राप्त दल द्वारा देश में दूसरे दलों को न पनपने देने की प्रवृत्ति नहीं। मैं मानता हूं कि केरल में जो कुछ हुआ, वह होना नहीं चाहिये था। कांग्रेस को निर्वाचन होने तक प्रतीक्षा करनी थी।

करुण ने कहा, "वहां की जनता द्वारा विद्रोह और क्रान्ति तथा वहां के नेताओं के विचारों को देखते हुए तो वहां केन्द्रीय हस्तक्षेप आवश्यक ही था।

क्यों ? क्या इसलिए कि वहां की जनता कम्युनिस्ट शासन के विरुद्ध थी ? जरा सोचो करुण। जिस प्रांत में जो दल बहुमत से विजयी हुआ उसके विपरीत एकदम यह क्रान्ति जनता करेगी, विश्वसनीय लगता है तुम्हें ?

करुण सोचता हुआ बोला, है तो इस में शसपंज की बात। मैं मानता हूं। परन्तु वहां की कम्युनिस्ट पार्टी भी जनता का मनोवांछित

रूप से कार्य और परिवर्तनों द्वारा हृदय परिवर्तन की अपेक्षा कर रही थी, यही कहां तक मानवोचित था। मानव स्वभाव के बिलकुल विपरीत हुई यह बात तो ?''

''लेकिन फिर भी इतनी बड़ी और काली तस्वीर उसकी न थी जो कि खींची गई, दिखाई गई। वह उस से कम थी। यूं थी किसी हद तक गलत।''

''सो तो है।''

''जय भइया, रबीन्द्र भय्या की तबियत खराब हो गई है। जल्दी लौट चलो।'' रवीन्द्र के छोटे भाई ने आकर बीच में ही उनकी बात रोक दी।

राजनीति के खिलाड़ी समाजसेवा के मंच पर काम करने में प्रसन्न थे। फौरन चल दिये।

रवीन्द्र की तबियत वाकई खराब हो गई थी। कुछ ही देर हो जाती तो···फ़ौरन उसे दवाई वगैरह दे चुकने पर जय ने करुण से कहा—'तुम जरा सब गाँव के बीमारों के पास एक-एक चक्कर लगा आओ। मैं रवीन्द्र के पास पी हूं।''

''अच्छी वात है।''

रवीन्द्र के भाई ने खत लाकर जय के हाथ में रख दिया। पार्टी का था। तभी खोलकर पढ़ा। जय ने लिखा था—

''पार्टी को तुम्हारी सख्त जरूरत है। फौरन चले आओ। पहली ट्रेन से।''

दल के सेक्रेटरी व प्रदेशीय सेक्रेटरी की मोहर थी।

जय ने उसे पढ़ा और सोच में पड़ गया। दल के अनुशासन और नियमों से वह परिचित था। जानता था कि उसके उल्लघंन का परिणाम क्या होगा।

पर गाँव। उसका अन्धकार पूर्ण भविष्य। वह कुछ निर्णय न कर सका।

करुण से मिल कर, जब जय ने पत्र के विषय में पूछा तो उसने कहा 'मित्र जब सलाह मांगी है तो वही दूंगा। यदि राष्ट्रसेवा के नाम पर वोट तुम्हें भी मांगने हैं, नेता तुम्हें भी बनना है, दल को केवल इसलिए पोषित करने के लिए कि अन्य दलों को हरा सके, हर उचित अनुचित कार्य करना है, तो जाओ और जरूर जाओ। यहां मैं संभाल लूंगा। तुम बस एक बार जब फुरसत हो, यहां हो भर जाना। रही बात यहां के आदमियों के मरने जीने की, सो इसका तो दलीय स्तर पर विचार ही नहीं किया जाता।

जय परेशान सा हो उठा।

वह कम्युनिस्ट इसलिए हुआ था कि निर्धनों, बेकसों और गरीबों के काम आ सके। यह दल क्योंकि इन लोगों के बिलकुल निकट था या यूं कहें कि खड़ा उनके आधार पर था, इसलिए उसकी अन्तरात्मा इसके साथ थी। परन्तु आज उसे दिखाने दिया गरीबों, मजदूरों को समता-समानता और स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार दिलागे वालों में इस बात पर विचार करने वाला कोई नहीं कि मरते, दम तोड़ते और सिसकते इंसानों के बीच में से भाग कर पार्टी का कौनसा और आवश्यक कार्य वह कर सकेगा।

यहीं मनुष्यता का दम घुट गया। राजनीतिक हानि हो गई।

आदमी गौण हो गया।

कुर्सी प्रमुख बन बैठी।

बोला जय, "मैं आदमी पहले हूं करुण। कम्युनिस्ट बाद में। नहीं जाऊंगा मैं।"

करुण ने उसे वक्ष से लगा दिला।

दोनों हंसते रहे। सीमित दायरों के ऊपर उठ कर वे मानवता का मन्दिर देख रहे थे। गंगा-यमुना संगम हो रहा था।

रात के अन्धेरे में लालटेन में रोशनी भर जय ने लिखा,

'भाभी !'

"यहां सब ठीक है। मरना और जीना बराबर चल रहा है। फिर भी मैं बराबर कोशिश कर रहा हूं कि रोकूं इस मृत्यु चक्र को। यह चक्र रुकते ही आऊंगा...

—जय

सुबह को खत उसने लेटरबक्स में डाल दिया।

एक सप्ताह बीत गया।

रवीन्द्र ठीक हो गया था और गाँव में बीमारी लगभग खत्म होने लगी थी। जय ने करुण से कहा—तुम चाहो तो अब जा सकते हो करुण। भाभी से मिलकर सब हाल बता देना और कहना कि मैं जल्दी ही आऊंगा।

"साथ ही चलते। वैसे तुम्हें ही जल्दी जाना चाहिए।"

"जरूरत है पार्टी को?"

"छोड़ो यार। इस गांव की मिटटी से मेरा शरीर बना है। इसकी परवाह अगर मैं नहीं कर सकता तो सौगन्ध राम और कृष्ण की, भारत और लक्ष्मीबाई की, इस देश की भी नहीं कर सकता।

इसके बाद कुछ भी कहने को करुण के पास न रह गया था। अगले ही दिन वह दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

ग्यारह

बीमारी ज्यों-ज्यों खत्म होती गई, सारे गांव की श्रद्धा जय के प्रति उमड़ती गई। गाँव के प्रमुख सदस्य एक दिन सुक्खू लाला की चौपाल पर इकटठे दुए। जय के सम्मान में वहां एक अच्छा भोज हुआ।

भरे गांव की सभा में चौ० रणपाल ने कहा—कुछ भी कहो भई, सुक्खू के जय बिटवा की मदद न मिली होती तो गांव तो चौपट हा

गयो होतो।

सुक्खू लाला तुरप की भी काट जानते थे। उन्होंने देखा कि जो प्रशंशा उन्हें करनी चाहिऐ थी, वह स्वयं करके रणपाल उनके अधिकार पर हावी हो गया, तो हंस पड़े वे—"क्यों ना चौधरी। याद है वा दिन जब जय भाई की दुखारी मां तुम्हारे पांव पड़ी इसको माफ कर देने की भिक्षा माँग रही थी। पर हाय राम तुम्हारी अकल पर तो पत्थर पड़ गये हे।"

'अजी इन्हीं की का कही जावे। सगरा गाम ही जय बिटवा को बदमाश कह रहा था वा दिन तो। नई तो ये बेचारा गाम छोड़ कर बेगाम बना। मारा-मारा फिरा—"एक चौधरी साहब ने कहा।

पण्डित गोपाल जी तुरन्त कह उठे—"मैंने तब मी कहा था और आज भी कहता हूं—चन्द्रमा पर कोई कितना ही कलंक लगाये, वह काला नहीं होगा। सोना के साथ जय का विशुद्ध प्रेम था। भाई बहन से ज्यादा।"

"अरे तो, पण्डित जी बिना परमान मानता कौन है? हमें का पता हो, या विशनु भगवान का अवतार है।"

'का पता हो। बड़े भोले बन रहे हो अब तो। जबै तो अगुवा बने घूमते रहो है। कहत थे—निकालो इसे गाम से। निकाल देओ गाम से।'

पण्डित बोले—"ए भी कोई बात, जो हुआ, ओ हो गया।"

अब तो सबने अपनी गलती समझी। जय की ओर से मुझे विश्वास है कि उसे कोई शिकवा बीती बातों का नही। क्यों जय?

और उसके साथ ही सब की दृष्टि जय की ओर घूम गई। परन्तु वह जा चुका था।

पण्डित जी की आंखों में प्यार और वेदना छलक आई, बोले—"हम लोगों की बीती बात याद नहीं करनी चाहिए थी।"

सब मौन रहे।

पण्डित जी अन्त में यही कहते रह गए—"वह एक दिव्यात्मा है। उसे कोई शिकायत किसी से नहीं। फिर भी अतीत की बीती बातें उसके दिल को कचोट गईं।"

जय ने रवीन्द्र से बराबर इस प्रकार के भोज में जाने से मना किया था। परन्तु वह न माना। अब जब वह इस प्रकार उठकर चला गया तो उसकी समझ में सब आ गया। धीरे से वह भी उठा और उसकी खोज में चल दिया।

जय बैठक से निकल बराबर चलता रहा। चलता रहा। गांव की सीमाओं से निकल एक बरगद के पेड़ के नीचे जा कर वह बैठ गया। ऊपर को देखा, दाढ़ी लटक रही थी बरगद की। उसके बाद उसने चारों ओर देखा, अंधकार नीरवता को पी रहा था।

वह बैठा रहा। मौन, एकदम मौन। आंखें उसकी बहने लगीं। कभी देखने लगतीं बरगद को। कभी उसकी सफेद दाढ़ी को।

तीन घंटे बीत गए इसी तरह। अंत में वह उठा, "मैं चलूंगा। अवश्य चलूंगा। रुकना मैं भूल चुका हूं। प्यार न करूंगा। किसी से भी। कभी भी।"

मुंह पर हाथ रखे वह लौट पड़ा। रास्ते में ही रवीन्द्र मिल गया।

"कहां चले गए थे" ? पूछा उसने।

"कहीं कहीं। घूमने चला गया था।"

"कहां ?"

"आगे सड़क तक।"

"इतनी रात गए ?"

"क्या हुआ पहचानी सड़कें जो हैं।"

"स्थान खतरे से खाली नहीं है जय, यहां मौत कदम कदम पर घूमती है।"

'मैं जानता हूं।'

'फिर भी" कुछ रुका रवीन्द्र और कहने लगा, 'फिर भी यह पागल-

पन किया आज तुमने। मेरा विचार है अब सोनी और उसकी याद को भूल जाओ जय कुमार! उसे…"

'रवीन्द्र।' जय की आवाज़ कांप उठी—"मैं सुबह ही गांव छोड़ जाऊंगा। अब उसे मेरी जरूरत नहीं रही। बस। मैं अब फिर निर्वासन भुगतूंगा।"

"लेकिन…?"

'मै कोई भी बीती वात नहीं सुनना चाहता।'

रवीन्द्र चुपचाप उसके साथ चलता रहा और सोचता रहा—'बचपन में पिता मर गए। रोटी-रोटी को परेशान रहा। जवानी मिली तो प्यार मिला। सो समाज के ठेकेदारों ने गांव का ठेका ले रखा था—गांव से बेइज्जत हो निकलने के बाद?'

रवीन्द्र की आंखों में वह दृश्य आ गया जब उसकी विधवा गरीब मां भूखी-तड़प तड़प कर मर रही थी। इस गांव में उसे कहीं आराम न मिला था। छोड़ने का फैसला भी कर चुकी थी इसे—मगर। हैजे में मां के प्राण चले गए। किसी ने उसे पानी तक न दिया, कोई उसके पास तक न गया।

जो रमजानी भंगिन उसके पास गई थी, उससे कहा था उसने—कभी मिले मेरा जय, तो कहना उससे—मां की आज्ञा है अपने बेटे को कि इस गांव को जला दे, खाक कर दे। वरना मेरा लाल नहीं...होगा वह...कि...चूड़े या...

कहते कहते ही वह मर गयी थी'

रवीन्द्र का रोयां-रोयां कांप उठा। उसी गांव को, उसी मां के बेटे ने मौत के मुंह से बचा लिया। अहसान न किया किसी पर। शिकायत न मानी किसी की।

रात ढलती गई, दोनों घर पहुंच गए।

सुबह उठकर जब रवीन्द्र ने उसको आवाज दी तो उसके कमरे से अकुलाहट की आवाज आयी। वह जल्दी से भीतर गया। जय की

चारपाई के पास उसने जाकर देखा जय खाट पर पड़ा कराह रहा था।

"जय !" रवीन्द्र चिल्ला उठा। मकान भर जैसे चीख उठा। आदमी इकट्ठे हो गए।

रवीन्द्र जय का मस्तक गोदी में लिए बैठा था, रवीन्द्र की माँ ने कहा, "जल्दी भगत को..."

"नहीं अम्मा। मुझे गोली दो रवीन्द्र। बस।"

"जय ! यह क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं रवि। मैं ठीक हो जाऊंगा। तू गोली दे।"

रवीन्द्र ने उठकर गोली दी जय को। मां को उसकी देखभाल करने को कह करीब के स्टेशन पर कविता को तार देने चला गया वह।

पता चलते ही सारा गाँव जय को देखने टूट पड़ा। हर बूढ़े बच्चे की जबान पर एक ही बात थी, "हे भगवान, इसे बचा ले चाहे···"

सब की भीड़ लगी थी कि अचानक एक औरत चौंक उठी, "सोनी ! तू कब आयी ?"

"अभी।"

जय ने सुना और उसकी चेतना निष्प्रभ हो गई। वह बेहोश हो गया था।

सब आदमियों ने रास्ता दिया, "आ सोनी आ। देख बिटिया कुछ कर सके तो तू ही कर।"

सोनी बढ़ी और जय की चारपाई के पास पायताने खड़ी हुई। उसकी आँखों में आंसू बिखर रहे थे। "कैसे और कब हुआ यह सब ?" उसके मुंह से निकला।

"अचानक ही।" एक वृद्धा ने उत्तर दिया।

तभी जय की चेतना जागी। दृष्टि अचानक सोनी की ओर गई। एक कंपकंपाहट के बाद उसे फिर बेहोशी हुई। हालत काफी खराब हो गई। सोनी ने बढ़कर उसका सिर गोदी में रख लिया और स्नेह

से दबाती रही।

सब मौन थे। सोनी की आंखें बह रहीं थीं, "उठ बैठो जय। तुम इस गांव में मर नहीं सकते। तुम इसके लिए अमर हो।"

सोनी बड़बड़ाती रही। न जाने क्या-क्या मन ही मन कहती रही। कभी-कभी कोई शब्द उसके मुंह से जोर से निकल जाता था, जिससे उपस्थित जन समझ लेते थे कि वह क्रुद्ध-पागल है।

अचानक मुखिया को पास बुला, उसके हाथ पकड़ जोर से झकझोरती वह बोली, "खड़े क्या देख रहे हो. मार दो न मुझे जान से? निकालो न इसे गाँव से। यह मर रहा है मेरे पास, मेरी गोद में। क्या आंखें फूट गईं आज जो वेश्या सोनी अब दिखाई नहीं देती?"

और फिर चीख उठी।

"उठ जय, उठ। तेरी मां ने कुछ कहा था मरते वक्त। लगा आग इस गांव को। राख कर दाढ़ी जारों को।"

और फिर कोई कुछ कहे। इसके पहले ही वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। समय बीतना शुरू हुआ। जय की हालत में कोई सुधार न हुआ। दशा बिगड़ी न सुधरी। पूरा एक दिन बीत गया। उसे जब भी होश आता, दृष्टि सोनी की ओर जाती। वह कह उठता—"जाओ सोनी। तुम जाओ, जाओ।"

और सोनी केवल आंसू बहाती।

सुनती···फिर भी अनसुना कर करती।

बैठी रही। वहीं बैठी रही।

बारह

अगले दिन सुबह की गाड़ी से ही कविता वहां आ गई। जय को देखकर उसने रवीन्द्र से कहा, "इन्हें स्टेशन पहुंचवा दीजियेगा।"

"नहीं भाभी ! इस नाजुक हालत में नहीं। दो तीन दिन तो यह अभी यहीं रहेंगे, आप भी रहिये।"

सोनी से कविता ने कहा, "आपको बहुत तकलीफ हुई यहाँ। अब तो आराम कीजिए। जाइए आप।"

"नहीं, नहीं। आप बैठिए, मैं इनकी सेवा कर ही रही हूं।"

"रवीन्द्र ने कविता को एक ओर ले जाकर कहा, "उनसे जाने के लिए हठ न कीजिए।"

"क्यों ?"

"वह……।"

"कहिए ?"

"बस यही संकेत काफ़ी होगा।"

"अच्छी बात है", कविता ने कहा और फिर उसी कमरे में चली आई। सोनी से बोली, "बहन नाम क्या है तुम्हारा ?"

"सोनी।"

"मेरे लिए पानी गरम कर देंगी क्या आप ?"

"क्यों नहीं ?"

"लेकिन पहले इस फ़र्श को धोऊंगी, फिर तुम्हें नहलाऊंगी।"

"नहीं।"

"देखो बहन यहाँ रहना है तो मेरी बात माननी ही होगी।"

"अच्छी बात है।"

तभी जय की आंखें खुली गईं। इस समय वह सो रहा था। तबियत कुछ ठीक हो आई थी। कविता की ओर देखते हुए मुस्करा उठा "आप ?"

बाद में एक फिसलती हुई दृष्टि सोनी पर गई, "तुम गईं नहीं अभी ?"

सोनी केवल हंस पड़ी। पश्चात बोली, "मेरी कसम है तुम्हें जाने के लिए न कहना। तुम्हारे अच्छे होते ही चली जाऊंगी मैं।"

"सोनी !"

"बस, जो कहना था वह हमने कह दिया, अब लेटे रहो।"

अगले दिन प्रातः तक जय की तबीयत काफी ठीक हो गई। सिर्फ कमजोरी रह गई थी। न्हा-धोकर कविता जय से बात कर रही थी कि सोनी आ गई, जय के पांव छू कर बोली, "अब जा रही हूं मैं।"

कविता ने लक्ष्य किया, जय काँप-सा गया। रोक कर पूछा उसने "तू ठीक है न ? क्या करते हैं तेरे पति।"

"वे ! वे ! मैं विधवा हूं जय।" हिचकते हुए कहती सोनी तेजी से निकल गई। जय स्तब्ध रह गया। कविता ने सिर पर हाथ फेर कर पूछा, "यह कौन है।"

"सोनी" जय के मुख से निकला।

"नाम सोनी तो है मैं भी जानती हूं, पर तुम्हारी।"

"मेरे साथ बचपन में खेला करती थी।"

"बस ?"

"बस।"

इसके बाद कविता चुप हो गई। थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा "करुण आये थे एक दिन। कह रहे थे कि तुम पार्टी की खबर आने पर भी नहीं गए।"

"हां, ठीक बात है।"

"और नौकरी पर······उसका तो ख्याल किया होता।"

"अब जाकर कर लूंगा।"

"खाक कर लोगे तुम। वह तो मैंने ही जाकर एक दिन आफिस में तुम्हारी एप्लीकेशन दे दी थी। बीमार हैं। करुण का सर्टीफिकेट था बीमारी का।"

"अच्छा किया।"

थोड़ी देर चुप रह फिर पूछा कविता ने, "जय, तुम्हें मुझ से नफरत है न ?"

"भाभी।"

"कतरा क्यों रहे हो ?"

"हो सकता है।"

"क्यों ?"

"तुम जानता हो।"

"इसलिये कि मैं दूसरों के साथ सिनेमा जाती थी, ऐं ?"

"भाभी, वह सब गलत था।" जय लम्बी सांस लेकर बोला।

"पर तुमने तो साफ देखा था।"

"आंखों से भी आदमी कभी कभी गलत देख लेता है।"

"और अगर वह सच हो तो ?" दृष्टि गम्भीर कर कविता बोली, "अगर तुम्हें प्रमाण मिल जाय कि मैं व्यभिचारिणी हूं और पतिता हूं, तो क्या करोगे तुम ?"

"मैं कहता हूं, इन बातों से फायदा ?"

"और मैं कहती हूं कि जवाब दो।"

"क्यों ?"

"जरूरत है।"

"तो सुनो भाभी। मुझे तुमसे अपार स्नेह है। फिर भी जिस दिन यह सच होगा मैं तुम से अलग हो जाऊंगा।"

"क्यों ?"

"मेरे अपने दिल की बात है।"

"ठीक है जय। तुम्हारा दिल तब तक प्यार देता है जब तक उसे यह पता हो कि प्यार करने को कविता के पास और कोई नहीं है जब यह पता चल जाय कि और कोई है तो नहीं देगा, यही न ?"

"हां।"

कविता गहरी निःश्वास लेकर बोली "जय, आज नहीं तो कल तुम यह जान जाओगे कि मैं वास्तव में पतिता हूं। इसलिए आज से ही नफरत करने लगो तो अच्छा हैं।" आगे कविता बोली "तुम ही

क्या हर आदमी सदा सिंगार करता है, लहलही हरी भरी लताओं को अपना स्नेह पिलाता है महकते फूलों की ओर............आवाज में रोषभर कर कविता बोली, "मगर क्या कभी सोचा है जो फूल धूल में गिरकर मुरझा जाय उनका दोष क्या है। उनका अपराध क्या है?"

कविता उसी तरह बोलती रही, "यही न कि किसी के निर्मम हाथों ने चाहे वे किसी जीव के हों या हवा के थपेड़े के ही हों, उन्हें जहां फेंका है, बेचारे वहीं गिरे हैं। कोई भी फूल स्वयं नहीं गिरता। उसे गिराया जाता है।

"जय तुम समाज सुधारक हो, वही पोंगापंथीपन तुम में भी है जो हर एक समाज सुधारक में होता है। पर तुमसे तो मुझे इसकी आशा नहीं थी। जय सुधारक तो एक सहनशील व्यक्ति होता है। उसको तो हर बिगड़ी हुई चीज़ से प्यार होता है। हमदर्दी होती है। जो बिगड़ गया उससे नफरत फैला कर तुम समाज की सेवा कैसे करोगे?"

"भाभी" जय बड़बड़ा उठा, "तुम चुप हो जाओ भाभी, मैं मानता हूं कि तुम मुझे समझाने के लिए यह कह रही हो। असलियत इसमें कुछ नहीं। सब गलत है।"

"काश कि ऐसा होता?" कविता ने कहा, और उठकर खड़ी हो गई। सुबह की गाड़ी से हमें चलना है न, तैयार हो जाओ।"

"अच्छी बात है।"

तेरह

घर आकर ज्यों ही जय ने अपने कमरे का ताला खोला, कुमुद ऊपर आ गई। कविता को साथ देख चौंक कर बोली, क्या हुआ

महामना, बड़े दुबले हो रहे हो ?''

"हाँ ।"

तीनों भीतर बैठ गए ।

कविता ने कहा, "मैं अब चलती हूं । रात को शायद फिर आऊं, तुम यहीं लेटना । मैं खाने पीने के लिए फल लाऊंगी ।"

कविता चली गई तो कुमुद ने उठकर जय के हाथ चूम लिए। उसके गले से लिपट गई । बोली, "इतने दिनों तक कोई खबर नहीं दी, तुमने ?" उसने लम्बी सांस ली । "मैं कुछ काम में फंस गया था ।" जय ने कहा "तू जरा तमीज से रहा कर री ।"

"अपना काम करो, आये बड़े तमीज सिखाने वाले ।"

तभी कुमुद की मां जीने से बोली, "कैसे रहे तुम बेटा । हो तो ठीक ।"

"ठीक रहा अम्मा जी ।" जय वहीं से बोला।

"कुमुद को बड़ी फिकर लगी थी तुम्हारी । कहती कहती अम्मा चली गई ।"

कुमुद को कविता का आना जाना अखर रहा था । पूछा जय से उसने "यह साथ गई थी क्या तुम्हारे ?"

"नहीं तो ।"

"बहुत हिल-मिल गई दीखती हैं तुम से ?"

"तुझे मतलब ?" रुखाई से जय बोला ।

"मैंने इन्हें दो बार अलग-अलग आदमियों के साथ सिनेमा देखते देखा है ।" कहकर कुमु चुप हो गई ।

शाम को नौ बजते ही कुमुद ने कविता के न आने का इंतजाम कर दिया । दरवाजा बन्द कर मां से कहा, "यह औरत जो इनके पास आती है, बहुत मुंह लग गई है रात-बिरात कभी आगे से आये तो दरवाजा न खोलना "

"अच्छी बात है ।"

जय को पूरी उम्मीद कविता के आने की थी। जब ११ बजे तक भी वह न आई तो बत्ती बुझाई और सो गया। ठीक साढ़े बारह बजे कुमुद फिर ऊपर आई।

जय की आंखें लगने लगी थीं। खाट पर लेटते ही वह बोली, "सो गए क्या ?"

"नहीं तो" जय ने आंखें खोल दीं "तू फिर...।"

"चुप लेटे रहो।"

जय बोला, "नीचे के किरायेदार अच्छे दो-तीन महीने के भ्रमण पर गए और तेरी बन आई। आज फिर सारी रात यहीं कटेगी क्या ?"

"क्या नुकसान है तुम्हारा ?" कहकर कुमुद चुप हो गई।

जय लेट गया। कुमुद ने कई बार उसे झकझोरा, पर वह फिर करवट न ले सका। और उनकी आंखें झपकी ही थीं कि कुमुद ने उसकी कमर पर हाथ रख दिया।

"क्या है", जय ने करवट ली।

"डर लग रहा है।" कहती हुई मुकुद ने उसकी पीठ पर अपना मुंह भी रख दिया।

जय इस बार बोला, "डर लग रहा है तो नीचे जाकर सो। मुझे परेशान न कर।"

"जय ......।"

"कह तो दिया।"

"मैं नहीं जाती।"

"अच्छी बात है।" जय उटा। चादर जमीन पर बिछाई और लेट गया।

सुबह उठकर जय ने मुंह धोया तो कुमुद ने और दिन की तरह पानी देने में उतावली नहीं दिखाई। वह अपने आप ही चाय बनाकर पी चुका था। कुमुद कई बार ऊपर आई भी, मगर एक बार

भी आज उसने चाय बनाने को नहीं कहा।

जय सब समझता था, चाय बनाकर पी ही रहा था कि कविता आ गई, "यह क्या बदतमीजी है। मैं मर गई थी क्या?"

"रात आई नहीं न?" जय बोला

"यह अच्छी रही। उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। दरवाजा तो नौ बजे ही बन्द कर लिया था।"

जय समझ गया।

कविता ने कहा, "अभी कमजोरी है, चलो बुलाया है उन्होंने। कहा है यहीं ले आ।"

"मैं अब तो दफ्तर जाऊंगा भाभी. शाम को वहां आ जाऊंगा।"

"आज न जाओ तो?"

"नहीं हो सकेगा।"

"क्यों?"

"मेरी आत्मा न मानेगी।"

"शाम को तो आओगे?"

"हाँ!"

"कविता चलने लगी तो बोली, "तो चलो स्कटर से छोड़ आऊं दफ्तर तक।"

"चलो फिर............"

और दोनों चल पड़े।

चौदह

जय को काम करते हुए आधा ही घन्टा हुआ था कि चपरासी ने लाकर एक चिट उसके सामने रख दी। मैनेजर ने फौरन बुलाया था।

वह उठा और चल दिया। मैनेजर को नमस्ते कर सामने कुर्सी पर बैठ गया।

"कहिये जय बाबू। क्या हाल है आपके गाँव में बीमारी का?"

"जी अब ठीक है।"

"कितने दिन सेवा की आपने।"

"२०—२५ दिन।"

"और दफ्तर में गैर हाजिरी!"

"इतने ही दिन।"

"क्यों?"

"यह आवश्यक था!"

"नौकरी कहाँ की पाते हैं आप?"

"यहाँ की।"

"फिर वहाँ क्यों गए!"

"आदमी बेमौत मर रहे थे सो......"

"काम से आदमी बड़ा है।"

"तुम्हारी नजर में!"

"हर आदमी की।"

"पूंजीपति की नहीं।"

"फिर!"

"आप जवाब दीजिए!"

"दे तो दिया।"

"वह बेकार है।"

"तब फिर तनख्वाह काट लीजिए!"

"जी नहीं। आप अपना हिसाब लीजिए और हमेशा के लिए आदमी की जान की परवाह कीजिए।"

"लेकिन?"

"कुछ नहीं, आप जाइए।"

"मगर !"

"मैं कहता हूं आप जाइए और हिसाब लीजिए ।"

जय उठा । स्टेबिलिशमेंट में कुछ देर रुका । हिसाब ले एकाउन्ट्स से बिल चुका सड़क पर आ गया ।

उसे पश्चाताप न था । उसने मानवीयता पर स्वार्थ को न्यौछावर किया था । रिक्शा पर बैठ वह पार्टी दफ्तर पहुंचा । पार्टी की ओर से उसे पूर्ण आशंका तो थी ही, जाते ही एक उत्कट नेता ने उसके सामने आज का अखबार फेंक दिया । फर्स्ट लीड का समाचार था, "चीन द्वारा पुनः भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण ।"

"लीड को वह पढ़ भी नहीं पाया था कि वह ही नेता कह उठे, "मिस्टर जय, पार्टी फैसला कर चुकी है कि तुम जैसे निकम्मे मनुष्य की कम से कम उसे जरूरत नहीं । तुम जल्दी ही इस्तीफा दे दो ।"

"क्यों ?"

'सेक्रेटरी से पूछना ।"

"आप ही से पूछता हूं !"

'पार्टी के नियमों का उल्लंघन तुमने किया है ।"

"कैसे !"

"जब पार्टी को तुम्हारे काम की जरूरत थी, तुम समाज सेवा पर तुले थे ।"

"लेकिन······"

"वहाँ हैजा फैला, सारा गांव मौत का घर बना था । बहुत आदमी मर रहे थे ।"

"यहाँ पार्टी जो काम कर रही थी !"

'पर पार्टी तो आदमी के बाद में है !"

'लेकिन पार्टी फर्स्ट है ।"

"मुझे यह मंजूर नहीं ।"

"सो तो है ही । अगर तुम ऐसा न समझते तो केरल में सरकारी

हस्तक्षेप के बाद हर कार्यकर्ता प्रान्त-प्रान्त में संघर्ष और प्रचार कार्य कर रहा है। और तुम······"

"मेरा कार्य किसी से कम नहीं। मैं रिपोर्ट दूंगा।"

'जरूरत नहीं। तुम्हारी हर हरकत इस पार्टी की निगाह में बेहूदा है। तम बेवकूफ और गद्दार साबित हुए हो।"

"लेकिन·········।"

"लेकिन-वेकिन क्या। तुम कामी पुरुष हो जय। किसी भी जगह काम नहीं कर सकते। नामर्द हो पार्टी की नजर में। इस्तीफा दो और मौजकरो।"

"अच्छी बात है मैं इस्तीफा दूंगा।"

"शुक्रिया।"

जय और न सुन सका। उठा और चला आया वहां से। सीधा कविता के यहां पहुचा। कविता देखते ही समझ गई कि कुछ खास बात है पूछा, "चाय बनाऊं!"

"हां!"

चाय पीते हुए जय ने कहा, "भाभी, नौकरी छूट गई और पार्टी ने इस्तीफा मांग लिया।"

"क्यों? इसका कारण!"

"समाज सेवा।"

"लेकिन यह तो अन्याय है।"

"तुम्हारी दृष्टि में। उनकी में नहीं, जिनके हर इशारे में अधिकार की बू आती है जिनके हर कदम में सत्ता का आभास होता है। जिन्हें ताकत चाहिए।"

"लेकिन!"

'कुछ नहीं भाभी। इन बड़ों, समाज, सेवकों, जनता के ठेकेदारों को गुलामों की जरूरत है। कोई मरे या जिये। ये तो कीमत उठाते हैं, उसकी, जो कर्सी की इज्जत बढ़ाता हो।"

"पर यह कम्युनिज्म तो हर आदमी के हक को, उसकी जीव-समस्या को सुलझाने वाला है। उसे मनुष्यता का अधिकार दिलाने वाला है ?"

"कौन इंकार कर सकता है। लेकिन सिद्धांत ही तो है। यहाँ पार्टी तो नहीं है यह। कम्युनिज़्म के सिद्धान्त, मार्क्स की आवाज अमर है भाभी। पर ! इनकी दृष्टि साम्राज्यवाद पर है। देखो न चीन को।"

'और यह हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट, इन्हें भी सत्ता चाहिए। मैं दावे से कहता हूं कि केरल का सबक पढ़ने के बाद अब ये सबसे पहले होंगे जो चीख-चीख कर कहेंगे, हिन्दुस्तान हमारा है। उसकी जमीन हमारी है। उस पर हमला अगर किसी ने किया तो हम सबसे आगे आयेंगे।"

"क्यों ?"

"मत पूछो भाभी। क्यों ? यही कम्युनिस्ट जो चीन के हिमायती हैं, जानते हैं कि अगर आज उसके खिलाफ नारा न लगाया गया तो हिन्दुस्तान की जमीन इनके लिए आग उगलेगी। जहर बरसायेगी।"

"सो कैसे !"

"ऐसे ही जैसे हो चुका है। एक बार हिन्दुस्तान में रह कर चीन के गीत गाने पर आने वाले दस साल के लिए हिन्दुस्ता । से कम्युनिज्म तो खो दिया इन्होंने। अब भी चूके तो······"

"पर तुम तो कम्युनिस्ट हो न !"

"हूं, और रहूंगा। पर इस पार्टी का मेम्बर आज से नहीं रहा जिसकी निगाह देश पर पीछे, देश के सिंहासन पर पहले है।"

"अच्छा ! अब बैठो, मैं खाना बनाती हूं।"

"मैं भी रसोई में बैठूंगा। नलिन नहीं आया अभी ?"

"नौ-दस बजे तक आयेंगे आज।"

दोनों रसोई घर की ओर चल दिए।"

पन्द्रह

रात को कविता ने जय से कोई विशेष बात नहीं की। सुबह जब वह सोकर उठा और चाय पीने लगा तो नलिन ने पूछा, "रात भर इसी फिक्र में परेशान रहे हो शायद, क्यों।

"नहीं तो।"

"फिर खुमारी अभी भी क्यों ?"

"कुछ नींद ठीक से नहीं आयी। परेशानी और बेकली मे न जाने क्यों शरीर में दर्द-सा महसूस हो रहा है।"

"दर्द !"

"तब तो तुम आज बिलकुल भी बाहर न जा सकोगे। कुछ दिन पूरा आराम करो अब।"

"करूंगा तो, मगर आज एक-दो जगह जाना है।"

"कहाँ ?"

"आकर ही बता सकूंगा।"

नलिन ने कहा, "लेकिन नौकरी तलाश करने नहीं। मैं अपने आप कहीं भी तुम्हारे लिए प्रबन्ध कर दूंगा।"

"नहीं जाऊंगा नलिन, नौकरी की तलाश में नहीं जाऊंगा।"

"तो फिर········फिर क्यों इधर-उधर झांकोगे।" कविता ने कहा।

"जाने दो।" यहीं से रिक्शा ले जायेगा और यहीं रिक्शा से आ जायेगा। रुपये डाल देना इसकी जेब में कुछ।"

"नहीं-नहीं।"

"तब कहीं नहीं जा सकता तू। अच्छा तो अब मैं चला, एक एन्गेजमेंट है। और हां, कविता दो बजे तुम तैयार रहना, मैं जाऊंगा। एक जगह चलना है।"

"अच्छा।"

नलिन चला गया तो कविता ने कहा, "कहाँ जाओगे? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"पार्टी के काम में तुम नहीं चल सकोगी।"

"पर पार्टी से तो.........."

"हाँ, मगर फिर भी अभी कुछ कार्य है।"

"जैसी तुम्हारीं मर्जी।"

"अच्छा तो मैं चलूं।" वह उठ खड़ा हुआ। कविता ने पूछा, "कब तक आओगे? शाम को दिन ढलने से पहले ही आ जाना।"

"अच्छी बात है।"

जय जहाँ तक दिखाई दिया, कविता उसे देखती रही।

सोलह

करुण ने कहा, तुम्हारी नौकरी चली गई। इसमें तो मैं कोई अनैतिकता नहीं देखता। तुम्हारे अपने विचारों के अनुसार पूंजीवाद ने कभी गरीब की फिक्र नहीं की, लेकिन मिस्टर गजानन का तुम्हें इस्तीफा देने को कहना मुझे आश्चर्यजनक लगता है।"

"कुछ आश्चर्य नहीं, उनका और मेरा वैचारिक मतभेद सदा से रहा है। वे काम के मुकाबले भाषण पर ध्यान देते रहे हैं और मैं काम पर।"

"कुछ भी हो। जनता में जितनी मांग तुम्हारी है, विरोधी तुम्हें

देखकर जितना दहलते हैं, इतने यहां के कम्युनिस्ट लोगों से नहीं। हर आदमी और मैं स्वय भी मानता हूं कि जिस क्षेत्र में भी तुमने काम किया, एक प्रबल बहुमत तैयार किया। ऐसी हालत में......" तभी श्री देवेश आ पहुंचे। जय को देखते ही बोले, "जय तुम्हें सेक्रेटरी ने बुलाया है।"

"क्यों, इस्तीफा माँगने के लिए। भेज दूंगा।" जय ने कहा।

"नहीं जय। उन्होंने तुम्हें समझाने के लिए बुलाया है। कामरेड गुरमुख और गजानन के बीच हुई बहस सुबह उन्हें जब सुनाई तो वे बहुत बिगड़े। बोले, "माना कि उसने पार्टी के आदेश का उल्लघन किया है। लेकिन जहां तक कर्मठ कार्यशक्ति का प्रश्न है, किस में है इतनी शक्ति। किस का है ऐसा कलेजा जो उसे कम्युनिस्ट विरोधी कहने की हिम्मत कर सके।"

करुण बोला, "मेरा भी यही विश्वास था।"

कामरेड कहता गया, 'उन्होंने स्पष्ट कहा कि गजानन हमारे माननीय सदस्य हैं। सिक्योरिटी के लिहाज से भी उनकी इज्जत है। मगर जहां तक कार्य और दृष्टिकोण का प्रश्न है, उनका और जय का कोई मुकाबला नहीं और किसी का भी नहीं। जुबान कोई कितनी भी चला ले।"

गजानन ने कहा, "तिब्बत के मामले में उन्होंने हमारी नीति का विरोध किया था।"

सेक्रेटरी ने तेजी से कहा, "पार्टी के नियम मान्य हैं, इसलिए सब ठीक है। लेकिन उसने जो तब कहा था वही क्या आज के कम्युनिष्ट गला फाड़-फाड़ कर नहीं कह रहे हैं।"

सब कुछ सुनकर जय ने कहा, "उनसे कहना कि मैं उनके दर्शन अवश्य करूंगा, जो कार्य वह देंगे, वह करूंगा। भी, मगर पार्टी से मेरा इस्तीफा है। यदि इसी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी है तो इसका अब मैं सदस्य नहीं रहा।"

गुरमुख बोला, "कुछ सोच लो जय। दो कदम पर ही तुम्हारे लिए पार्लमेंट है।"

जय बोला, "गुरमुख, मुझे कुर्सी का लालच नहीं है। मैं लात मारता हूं ऐसी कुर्सी पर। लानत भेजता हू ऐसी लीडरी पर जो जनता के दुखों की नहीं, उनके वोट की कीमत समझती है।"

गुरमुख ने और कुछ नहीं कहा। चला गया।

"तुम करोगे क्या जय?" करुण ने ही पूछा।

"जिऊंगा।"

"किस तरह?"

"औरों के साथ। जैसे सब जीते हैं।"

"तुम भी एक दरिया हो जय। तुम्हारी लहर गिनना हंसी-खेल नहीं।"

"मैं इस जिन्दगी के तूफान में पड़कर कविता को भूल चुका हूं करुण। क्यों सुन रहे हो?"

"तुम कविता को भूल गये, होश में हो न? सुबह कहाँ से चले थे।" करुण ने अट्टहास किया।

जय भी हंस पड़ा।

करुण सोच रहा था, "मैं सिद्धांतः जितना कम्युनिस्ट विरोधी हूं, काश! इसका भी उतना ही विरोधी हो जाता।"

घर पर कुमुद ने ज्यों ही सुना कि जय की नौकरी छूट गयी और वह जल्दी ही दिल्ली छोड़कर जाने वाला है, झट उससे कह बैठी, "बस अब तो एक ही रास्ता रह गया है।"

"क्या?"

"जो मैं बताऊं, वही करो।"

"लेकिन, क्या?"

"रात को ही बताऊंगी।"

"रात को तो मुझे कविता के यहाँ जाना है।"

"कविता ही हो गई सब कुछ। मेरी कुछ कीमत नहीं।"

"है क्यों नहीं। तेरी कीमत अलग है, उसकी अलग।"

"पर मानते हो तुम उसी की ज्यादा।"

"माननी भी चाहिए।"

"खाक माननी चाहिए। अब आये वह मुंहजली इस घर में अगर घुसने दूं तो?"

जय के नथुने फड़क उठे, "जबान संभाल कुमुद।"

"नहीं संभालती। जो मेरे रास्ते आती है, उस कलमुंही के लिए जबान नहीं रोकूंगी।"

"कुमुद......"

"डराते क्यों हो? कोई धौंस है क्या मुझ पर, यह तो मेरी मर्जी है कि मैं किसी की इज्जत करूं या न करूं।"

"तो यह मेरी मर्जी है मैं किसी की सुनूं या न सुनूं।" जय चल दिया।

"कहां चले?"

जय चुप चलता रहा।

"बोलो न कहाँ चले?" कुमुद रास्ता रोककर बोली, 'तुम्हें मेरे सिर की कसम, आज कहीं मत जाओ, लो मैं माफी मांगती हूं।"

जय स्तम्भित रह गया। कुमुद नीचे चली गयी। जय उस रात वहीं रह गया।

कुमुद ने ठीक नौ बजे दरवाजा बन्द कर दिया। कविता का भेजा हुआ आदमी जय को देखने आया भी और लौट भी गया।

निश्चित समय—ठीक साढ़े ग्यारह बजे कुमुद जय के कमरे में घुसी।

जय को नींद आ गयी थी। सहसा वक्ष पर कुछ भार का आभास पा चौंक उठा। जय की पूर्ण निद्रा भंग हुई तो बोला, "तू फिर आ गयी?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"मन नहीं लगता तुम्हारे बिना।"

"जब मैं दिल्ली छोड़ दूंगा तब ?"

"तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"चल ली मेरे साथ।"

"सुनो, आज यही मुझे आप से कहना है। आपकी नौकरी छूट गई तब परेशानी है ही। यह चिन्ता न करो। मैं पांच-छह हजार का इन्तजाम कर लूंगी।"

जय की सांस रुकी-सी रह गयी। बोला, क्यों करोगी ऐसा ?"

"अपने छलिया के साथ चलने के लिए। दुल्हन बनकर।"

जय की चेतना अपने को स्वयं भूल गयी, "कुमुद होश में है न तू ?"

"पूरे होश में।"

"तू तो बेहोश लगती है।"

"कैसे ?"

"होश में होती तू तो क्या यह सब बकती ?"

"क्या बका ?"

"यही छलिया—दुल्हन।" जय आगे बोला—"कुमुद भला यह कैसे हो सकता है ?"

"कुछ कमी है मुझ में ?"

"नहीं।"

'लंगड़ी लूली हूं।"

"नहीं।"

"फिर ! उस कविता के डोरे हैं क्या तुम्हारी आँखों में !"

"कुमुद तुम अपनी बात करो, उसकी नहीं।"

कुमुद की आवाज जैसे भीग-सी गई, "तुम नहीं करोगी ऐसा !"

जय को लगा पानी में आग लग रही है। इसमें अचम्भा क्या है।

"फिर मुझे भुलावे में क्यों रखा।" कुमुद बोली।

"क्या भुलावा दिया मैंने।"

"वही जो व्यवहार करते रहे।" कहते-कहते उसके पैर पकड़ लिये और बोली, "मान जाओ मेरी बात।"

"नहीं।"

वह रुआंसी हो बोली, "मैं जानती थी कि तुम नहीं मानोगे। मगर फिर भी यह सब किया मैंने।"

जय को और आश्चर्य हुआ, "क्यों किया!"

"मत पूछो।" वह रोते-रोते चल दी।

"बताओ न मैंने भागने को ही तो मना किया है, तुम्हारी बात सुनने को तो नहीं।"

"लेकिन बात सुनाने लायक नहीं है।"

"मुझसे भी कुछ छिपाया है तुमने!"

"हाँ!"

"बताओगी नहीं?"

"शायद नहीं।"

"इसलिए कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी?"

"नहीं! बल्कि इसलिए कि उसे सुनकर अब मुझसे नफरत हो जायगी। यह तो पता चल गया कि प्रेम नहीं था मेरा।"

कुमुद को जय ने बैठा लिया, "गलत न समझो। प्रेम इतना संकुचित शब्द नहीं है।"

"लेकिन वह बात संकुचित है।"

"फिर भी तुम्हें बतानी ही होगी।"

"क्यों?"

"मेरे सिर की कसम है।"

वह कुछ देर चुप बैठी रोती रही। फिर बोली, "तुमसे पहले इस

मकान में एक और लड़का किरायेदार था। पता है।"

"हां।"

"वह बिलकुल आप से उल्टा था। तुम मुझ से जितना दूर भागे, वह उतना ही पास आया और······" और बात उसके गले में अटक गई।

"बोल न और क्या है।"

"मुझे चौथा महीना है।" वह सिसकती हुई चल दी।

सत्रह

कुमुद जीने से उतर कर नीचे चली गई तो जय सोचने लगा, "केवल इसी लिए इसने बार-बार······। यह मुझे धोखा देना चाहती थी। प्रेम के भुलावे में विश्वासघात !"

उसका पौरुष पुकार उठा, "यह मेरे प्रति षडयन्त्र था।"

"तभी चेतना ने कहा, षडयन्ड़ ! हां षडयन्त्र ही सही। लेकिन क्या पहले उसे इसी षडयन्त्र का शिकार नहीं होना पड़ा। क्या उसी जैसे एक पुरुष के हाथों वह भी पराजित नहीं हुई। इस कलंक-कालिमा को संभाल बैठी। आदमी की हविश के लिए क्या इसने अपनी जिन्दगी को खतरे में नहीं डाला। क्या वह स्वयं एक तहजीबी परिन्दे के पंखों में दम नहीं तोड़ रही ?

जय का हृदय सिहर उठा। इतनी वेदना पहले कभी उसे नहीं हुई थी। कुमुद से वह स्नेह करता था। उसके जीवन का मोल वह इतना सस्ता न समझता था। वह न जानता था कि उसे इस तरह की चितायें भी हैं।

रात उसके माथे पर हथौड़े चलाती रही और सुबह होते ही बालों में कंघा कर, चप्पल पहन, वह कविता के घर की ओर चल दिया।

कविता घर पर न थी। था केवल नलिन। अपनी प्रियंवदा, स्फूर्ति-दायिनी, रागरंजना, 'ह्विस्की' का पैग वह ले रहा था।

जय को आते देख जल्दी में पैग छिपाता हुआ बोला, "आओ, आओ जय।"

जय ने देख लिया था, हंसते हुए पूछा, "कम पियो तो नुकसान?"

"अरे छोड़ यार। रात क्यों नहीं आया?"

"मकान पर चला गया था।"

"खाया कहां।"

"कहीं नहीं।"

"क्यों?" नलिन कृत्रिम क्रोध दिखाता हुआ फिर बोला, "मैं सौ मर्तबा कह चुका, ये बदतमीजियाँ करेगा तो मारूंगा बहुत।"

"अब नहीं करूंगा, भाभी हैं?"

नहीं।"

"कहाँ गई?"

"एक परिचिता के यहां।"

"कब आयेंगी?"

"कह नहीं सकता।"

"अधिक देर लग सकती है क्या?"

"शायद।"

"अच्छी बात हैं। तब तक फिर मैं तनिक सड़क पर घूम आऊं और तुम अपनी इस प्राणेश्वरी ह्विस्की का पान करो।" कहकर जय बाहर चल दिया। नलिन आवाज़ देकर उसे रोकता रहा, पर वह चला ही गया।

जय सड़क पर आया ही था कि तेजी से अपनी ओर आता हुआ अरुण

उसे दिखाई दिया। उसने भी जय को देख लिया था। इसीलिए पास आकर खड़ा हो गया और तेजी से बोला, "आओ अपनी साध्वी भाभी के दर्शन करना चाहो तो मेरे साथ चलो। वह पतिव्रत धर्म का पालन रही है।"

"होश में है तू ···?" जय ने पूछा।

"बिलकुल होश में हूं।" अरुण ने कहा और उसका हाथ पकड़कर चल पड़ा। असमजस और क्रोध में भरा जय भी उसके साथ हो लिया। एक कोठी के दरवाजे पर पहुंचकर अरुण ने चपरासी से पूछा, "वह अन्दर है क्या!"

"कौन?"

"जिसके बारे में कल सौदा हुआ था!"

"कौनसा सौदा वह हुस्नये मलिका!"

"हाँ, वही सौदा!"

"कैसा सौदा?" जय नीचे से ही बोल उठा।

"तुम्हें मतलब! मैं इनसे बात कर रहा हूं। इन्हें मैंने पहले भी देखा है।" चपरासी ने कहा।

अरुण ने जय का हाथ पकड़ा और बोला "चलो। सबूत चाहो तो यहीं बैठकर उसके निकलने तक प्रतीक्षा करो।"

"नहीं। तुम यहीं ठहरना। मैं जरा एक घंटे में अभी आता हूं। अगर वह कहीं निकले तो रोके रहना।"

"अच्छी बात है।"

जय चला गया और लगभग एक घंटे बाद नलिन को लिए लौटा नलिन ने पूछा, "यहां क्या काम है तुम्हें? क्यों लाये मुझे?"

"अभी बताऊंगा बैठे रहो।"

"लेकिन क्यों! मुझे काम है।"

"ठहरो!"

तभी भीतर से कविता निकल आयी। अस्तव्यस्त-सी साड़ी थी, नीचे को देखती हुई वह चली आ रही थी। बाहर आते ही जय ने कहा, "पूछो इनसे किससे मिलने आई थीं यहाँ ?"

नलिन ने कविता को आवाज दी।

कविता ने पीछे देखा—पागल हिरनी की तरह धनुषबाण से विक्षिप्त-सी दृष्टि......"

पूछा नलिन ने, "यहां कैसे आयी थीं ?"

"एक सखी से मिलने।"

"नहीं।" कहा अरुण ने, "ठीक बोलो।"

"तुम्हें मतलब। हमारे घर की बात है। घर में करेंगे। तुम कौन हो ठीक जानने वाले ?"

नलिन ने कहा, "बताती क्यों नहीं ?"

कविता बोली, "हठ न करो। घर चलो।"

अरुण ने कटाक्ष किया, "क्यों नलिन, अब पूछते क्यों नहीं ? क्यों जय, कहाँ गई तुम्हारी भाभी की पवित्रता ?"

"बताओ कविता !" नलिन गरजा। कविता चलती हुई बोली, "घर बताऊंगी।"

नलिन ने उसके गाल पर एक तमाचा लगा दिया, "बताती क्यों नहीं ?"

कविता दो क्षण को मौन हो गई। एक बार जय की ओर देखा फिर सीने पर हाथ लगा कंचुकी में से सौ-सौ के पांच नोट निकाल कर पैरों पर फेंकती हुई बोली, "इन्हें लेने गई थी।"

"क्यों ?" नलिन का तेज फीका पड़ गया था।

कविता की आंखें बहीं। हृदयाकाश में मेघ मण्डरा गए। कण्ठ आर्द्र हो उठा। वाणी चंचल बन गई और स्वर तीव्र—"तुमने कहा था, इसलिए। हिन्दुस्तानी औरत थी इसलिए। हिन्दुस्तानी औरत थी इसलिए पति को परमेश्वर मानती थी, इसलिए हिन्दुस्तान की जमीन

पर पुरुष हरेक काम छोड़ देगा, पर शराब, कबाब, व्यभिचार और बद-फैली नहीं छोड़ सकता।"

"इसलिए आई थी कि हिन्दुस्तान के मर्दों ने औरतों की कमजोरी, सचाई व नेकी का फायदा उठाकर औरत से वह काम कराना भी शुरू कर दिया है, जिसे कोई शरीफ आदमी नहीं करा सकता। इसलिए आई कि तुम ऐश करो, शराब पियो, मुझे इन......अरुण जैसे मित्रों की हविश कर नाचने को कहो और कहो कि अपना शरीर बेच दूं।"

कविता की आँखें सुर्ख हो गईं। नलिन ने एक लात उसे जमाई।

लात खाकर कविता फिर बोली, "पता चल गया आपको कि क्यों आई थी यहाँ ?" फिर अरुण से बोली, "मगर सुन लो अरुण जी, तुम्हारे जैसे पांच हजार मेरी इज्जत नहीं ले सके, शराब और मेरा भुलावा पाकर ही बेकार रहे, वैसे ही हर एक रहा। मैं आज तक तुम जैसे गली के कुत्तों की इज्जत करती रही। इनके इशारे पर सभी काम करती रही। करती भी रहती, पर अब......?" नलिन से कहा उसने, "तुम सोच रहे हो तुमने मेरी बेइज्जती करदी। सुनो, तुमने मेरा रास्ता खोल दिया, जिसके सामने मैं यह बात नहीं आने देना चाहती थी. उसी के सामने...आज मैं किसी की बीवी नहीं, किसी की, किसी की कभी भी कुछ नहीं।" कहती-कहती वह तेजी से चली गई।

नलिन मूर्छित-सा होने को था। जय ने उसे संभाला और इधर-उधर देखा। अरुण चला गया था।

अठारह

सूरज ने अपनी पालकी से उतर कर रात की गोद में जब विश्राम करना चाहा तो कविता खड़ी होकर अपने चारों ओर देखने लगी

अंधेरा छा रहा था और उसके आसपास दूर तक न कोई बस्ती दिखाई दे रही थी न कोई मनुष्य आदि। वह निर्जन में अकेली थी और रात······।

कविता का हृदय अपनी परिस्थिति में उलझ गया। नलिन के पास जय और अरुण को छोड़कर वह चली तो सीधे यमुना की ओर आत्महत्या के विचार से नहीं, जीने के लिए। यमुना का पुल पार किया और जब तक दिन रहा वह चलती गयी, चलती तो वह और भी जाती, लेकिन अंधकार घिर गया था और उसके विचारों की तारतम्यता टूट गई थी। वह भयभीत हो कंपकंपा उठी, पर रुकी नहीं। चलती रही। उसके मन का उद्वेग आगे था सो आगे ही रहा। अंधकार और रात्रि की भयानक स्थिति का आवरण चीर वह मन-मार्ग से जय के पास पहुंच गयी।

प्रात:काल का समय था और कविता अपनी शय्या पर ही अभी लेटी थी कि जय आ गया। उसे लेटे देख वह कहने लगा, "भाभी रात को देर तक जागना, देर तक सोना पड़ता है, इसलिए जल्दी ही सो जाया करो न!"

"सोने दें मुझे वे······तब न?" कविता ने हंसकर कहा और जय ने पूछा था, "कहां है नलिन भइया?"

"बाहर गए हैं।"

"तो फिर मैं भी चला।"

"बैठो, चाय पीकर जाना।"

और चाय पीते-पीते जय ने कहा था, "रात में भी देर से सोया था भाभी, एक पिक्चर देखी थी स्वयं सिद्धा। मैंने संसार में जितनी पतिव्रताओं की परिभाषाएं पढ़ीं उन सबसे अलग वह एक अनूठी पतिव्रता थी।"

"कैसी?"

"जैसी तुम हो।"

"मैं कैसी हूं ?"

"जो अपने पतिव्रत धर्म को जीवन के किसी भी क्षण में न छोड़े। पति को देवता मानकर परपुरुष का ध्यान भी न करे। पति की शराब की आदत और अय्याशी को भगवान की माया समझे।"

"जितना विश्वास करते हो मुझपर उतनी पतिव्रता हूं नहीं मैं।"

"यही तो मैं भी जानता हूं, हो तुम बहुत अधिक, मेरी कल्पना से भी ऊंची, भाव से भी महान।"

"बस चुप भी करो।"

"चुप नहीं भाभी, तुम पतिव्रताओं में आदर्श हो, और सदा रहो यह मेरी कामना है।"

"जय···" कविता के मुख से निकल गया था, "क्या भविष्य मुझ में परिवर्तन ला सकता है, ऐसा सन्देह भी है तुम्हें।"

"नहीं भाभी, नहीं!" जय ने चौंकते हुए कहा, "न जाने यह बात मेरे मुहं से कैसे निकल गई। मैं तो स्वप्न में भी तुम्हारे ऊपर सन्देह नहीं कर सकता।"

अचानक कविता की विचारधारा भंग हो गई। किसी ने उसकी आखें और मुंह पीछे से बन्द कर लिया था।

उसने चीखना चाहा, न चीख सकी। हाथ उसके सारे शरीर पर बढ़ते आ रहे थे, "संक्रामक रोग की तरह। वह एक झटके से उछली और सड़क पर गिर पड़ी। साथ ही उसके मुंह और शरीर का बंधन छोड़ कर कोई और भी गिरा। वह पूरी शक्ति से चिल्लाई। उसकी पूरी शक्ति चेतन हो गई और बिना पीछे को मुड़कर देखे वह उठकर भाग खड़ी हुई।

कोई उसके पीछे अब भी भाग रहा था। उसका पांव घबराहट में किसी चीज से टकरा गया और वह गिर पड़ी। पूरी शक्ति से चिल्लाई।

तभी फिर किसी ने उसे जा कसा। उसके सिर पर एक मुक्का-सा

पड़ा ग्रौर वह गिर पड़ी। बेहोश-सी। अंधकार में ग्राखें फाड़े वह देखने लगी। वह दुर्दान्त पशु उसकी ग्रोर बढ़ रहा था कि किसी ने उसको पकड़ कर जोर से पृथ्वी पर पटक दिया। कविता उठ खड़ी हुई। दो ग्रादमी गुत्थमगुत्था थे। उसने भागना चाहा, न भाग सकी, रक्षक को संकट में छोड़ पाँव न बढ़े। सहसा नीचे वाला किसी प्रकार ऊपर वाले को पाँव से धक्का देने में सफल हो, भाग खड़ा हुग्रा तेजी से। उसका पीछा किये बिना दूसरा व्यक्ति बोला, "ग्रकेली रात में क्यों चली बहन, कहाँ जाना है?"

कविता के ग्राक्रोश ने उभारा लिया तो उसे संभाल कर वह बोली, "ग्रगले गांव तक।"

उस व्यक्ति ने पूछा, "वहीं मैं जा रहा हूं चलो किसके जाग्रोगी।"

कविता को ग्रब कहना ही पड़ा, "परिचित तो कोई नहीं ग्रपना जहाँ इज्जत से सोने को जगह मिल जाय, वहीं रात गुजारूंगी।"

वह व्यक्ति शायद जीवन का पर्याप्त ग्रनुभवी था। ग्राहिस्ते से बोला, "मेरा नाम रामसेवन है बहन, चलो मुझपर विश्वास कर सको तो ग्राज मेरे घर पर ही ठहर जाना। बच्चे बीबी से जो हो सकेगा खातिर करेंगे।"

कविता के सम्मुख ग्रविश्वाश प्रश्न ही नहीं था। वह चलती रही।

उन्नीस

जय घर पर नहीं गया। कई दिन बीत गए थे। कुमुद इससे ग्रधिक चिंतित थी। यूं वह जानती थी कि वह ग्रब शायद ही ग्राए। लेकिन न जाने क्यों उसके कमरे में नित्य रात्रि को जाती ग्रौर सोती। उसका

सामान देखती, रखती और ढंक देती। इससे उसे शांति मिलती हृदय को श्रराम मिलता।

एक दिन इसी प्रकार से जय के कमरे में बैठी वह अपनी कहानी पर आंसू गिरा रही थी कि ऊपर टांड पर पड़ी एक किताब पर उसकी दृष्टि पड़ गयी। पहले तो उसने नजर वहाँ से हटा ली, पर फ़िर शीघ्र ही कौतूहल जागा और उठकर वह किताब उठा लायी। खोलकर देखने पर पता चला कि वह किताब नहीं डायरी थी, क्योंकि पहले पन्ने पर लिखा था..."निजी—पूर्णतः निजी वेदना के लिए······

—जय!"

वह उसे ले अपने घर आ गयी। और रात के होने से पूर्व कुमुद ने अपनी चारपाई पर लेटे ही लेटे डायरी को पढ़ना आरम्भ कर दिया।

टन-टन-टन, घंटे बजे चले जा रहे हैं। पाषाण-प्रतिमाओं की पूजा अर्चना में भक्तों की स्वर लहरी आरती की झंकार कानों में तीक्ष्ण आघात कर रही थी।

"गाइये गनपति जगवन्दन···

मन्दिर के प्रागंण में शब्द गूंज रहे हैं और···

"सोनी···सोनी···सोनी···मेरे भीतर कोई पुकार रहा है—अप्रतिहत अबाध।"

"कौन?"

"कौन है वह जो मन्दिरों की हिरण्य गुहाओं से निसृत झंकार सुन रही है।"

सिद्ध सदन गज वदन विनायक···

कृपा सिन्धु सुन्दर सब लायक···

किसकी है यह अभ्यर्थना। कौन—मानषी जीवन के प्रति वैमनस्य घृणा और तिरस्कार के इस कर्ण कटु समष्टि गीत में यह आरती का सम्मोहन राग किस लिए...

एक ओर मानवों के हृदय पर पाद प्रहार निःशब्द अत्याचार और

अन्त में टंकार···

और

मेरा मस्तिष्क विकृत हो गया है।

क्या ? ज्ञान तन्तु शिथिल हुए हैं ? सोनी···सोनी···सोनी···कौन है मेरे नेपथ्य में जो अश्रुत स्वर में दुहराये जा रहा है।

सोनी मेरा कोई नहीं।

यह गाँव मेरे लिए शमशान है। मै इसका मुर्दा हूं। मेरी सूरत से भी इसके निवासियों का, समाजी दरिन्दों का रुआं कांप उठा है। दिल दहल रहा है, साँस रुक रही है···मेरी साँस में जहर जो है······

जहर मेरे अरमानों का—

मेरे अन्तरमन की छलना—कल्पनाओं का।

साथ खेलने से क्या होता है। साथ-साथ रहना भी कोई रिश्ता है! स्त्री के साथ पुरुष का कोई संबंध !

"नहीं-नहीं-नहीं।"

यह तो समाज का नियम है। जो जवान है वह जवान के साथ बात नहीं कर सकता। जिसे सदा मन की बात बतायी है, अब नहीं बता सकता। नहीं।

सोनी मेरी ! कोई नहीं रही। समाज की बपौती हो गई, जवान जो है उसकी चिंता सब को है अब।

भूखी सोनी मेरी थी। चिथड़ों में लिपटी प्यासी, ठिठुरती और दर्द से कराहती···वह मेरे पास आ सकती थी।

कचपन की, उगती नंगी पिंडलियां दिखा सकती थी वह। उसका बचपन कितना सुन्दर है. बता सकती थी, पर अव नहीं। अब वह जवान हो गयी है। उसके वक्ष गम्भीर हो गए, बाल लम्बे हो गए। खाल चमकदार हो गयी और······

अब वह समाज की बपौती है। उसकी देखभाल करने का उसको हक है। मैं इससे बात करने वाला कौन ?

"कोई नहीं ?"

"मेरा उसका रिश्ता ?"

"कुछ नहीं ?"

"मेरा उससे मतलब ?"

"कुछ नहीं।"

उफ् हड्डियां दर्द कर रही हैं। रात हो गयी। मन्दिर सो गया। मूर्ति पुजारी और भक्त सो गए। शिवरात्री का प्रलयंकर नृत्य समाप्त हो गया।

"नींद क्यों नहीं आती ?"

"उफ् ! हे भगवान, नहीं, नहीं उसका नाम नहीं लूंगा, उससे फरियाद नहीं करूंगा।"

सवेरा हो गया है। वे दूर राही गाते जा रहे है······

फुलवा होते होते खिलयो
भोर हुई है।
सन्ध्या होवे,
फिर माटी में मिलयो।
फुलवा होले होले खिलयो।

अब जाऊंगा इस गांव से दूर। मां, ओ मां, अब तू फिक्र न करना तेरा जय अब इस गांव में न आयेगा। जरूर आयेगा। पर इन सबका दर्प चूर करके। तेरा दूध नहीं लजाऊंगा मां। तू भूखी रहे, दुखी रहे, रह लेना। एक दिन सुनेगी कि तेरे जय ने इससे तेरा बदला ले लिया। जय जीत गया।

चलूं।

मंजिल दूर खड़ी है।
मुशिकल रोके राह पड़ी है।

उफ् दर्द बहुत है। शैतान के बच्चों ने सारा शरीर तोड़ कर रख दिया है।

"कुमुद रात बहुत हो गई है। अब बत्ती बन्द कर और सो जा।"

कुमुद मां की बात सुनी-अनसुनी करना चाह ही थी कि फिर कह उठी मेरी तबियत ठीक नहीं है बत्ती बन्द कर दो।"

कुमुद ने उठकर बत्ती बन्द कर दी तो मां ने पूछा, "वह जय आया क्या?"

"नहीं तो।"

"कुछ कह कर गया है।"

"नहीं।"

मां चुप हो गई तो कुमुद घंटों तक पड़ी सोचती रही। आखें उसकी बह रही थीं और मन उसका सोच रहा था—वे फिर नहीं आयेंगे क्या? उन्हें दुख बहुत था।

बीस

कविता रामखेवन के घर से प्रातः ही उठी और सोते से जागकर बोली, "तुमने आज मेरी सहायता और रक्षा की है उसका बदला अब जीवन में न चुका सकूं लेकिन अहसान मानूंगी। अब चलती हूं।"

रामखेवन गंवई गंवार था। फिर भी नेक और हिम्मत वाला। "अभी चल दी। इतनी बदयकीनी है तुम्हें मुझ पर···" वह बोला।

कविता उसके भाव को समझ गई। उसने जो कुछ न बताया इससे दुखी था। कहा उसने, "नाम मेरा कविता है भैया। अता-पता क्या है, यह तो मुझे भी मालूम नहीं।"

"आई कहां से हो!"

"कहीं से भी नहीं।"

"क्यों ?"

"जहां से चली, वह अपनी जगह नहीं रही। बस और न कुछ पूछना इस बारे में।"

"तो यहीं ठहरो, जैसी रूखी सूखी हैं मिलेंगी।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"बस यूं ही। मैं मजबूर हूं यही समझो।"

"जाओगी कहां ?"

'कह नहीं सकती।"

"तो फिर रह जाओ न यहीं।"

"नहीं भइया। मैं नहीं रहूंगी। यह छोटी सी सोने की चीज है अपने मुन्ने को दे देना मेरी तरफ से।" कविता ने गले की जंजीर उसके सामने रखी और चल दी।

"कविता बहिन मैं यह नहीं लूंगा।"

"क्यों ?"

"यह तो मेरी, कीमत हुई।"

कविता ने रुककर कहा, "इतना बड़ा दिल रखते हो फिर भी इतनी छोटी बात, बहन अपने भाई के लड़के को जो दे, वह कीमत हुई।"

"पर.....।"

"पर-वर कुछ नहीं। तुमने रात खुद देखा है इन चीजों पर सौ की नजरें पड़ेंगीं! न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। मैं इसे तुम्हें दे, निश्चन्त हो रही हूं।"

रामसेवन ने देखा, "सरस्वती लक्ष्मी की चर्चा की जिस प्रभा की, चर्चा सुनी हैं! वह उसके मुख पर दिद्यमान हैं। कहा उसने, "पर मैं तुम्हारे लिए कूछ नहीं कर सकता क्या ? जान रहा हूं कि मुसीबत में हो फिर भी...

मानकर प्यार कर सके ।''

आत्मा चीख-सी उठी, ''मैं वारविलासनी तो नहीं। मैंने पति की आज्ञा पर केवल उसे प्रसन्न रखा है। अपना तन नहीं बेचा, मन का सौदा नहीं किया।'' सोचते सोचते कविता सिहर उठी, ''उनका क्या हुआ? यह अपमान की, आत्मग्लानि की चोट उन्होंने कैसे सही होगी?''

मन ढीठ था, उसने पूछा, ''उससे तुझे मतलब? जिसने तेरे शरीर तक का सौदा किया, कुछ भी हो उसका?''

कविता बड़बड़ा उठी, ''नहीं-नहीं-नहीं। वे मेरे हैं। अच्छे-बुरे जैसे हैं कुशल से रहें। वे न रहे तो······?''

बाबा ने मुड़कर देखा, ''क्या बेटी, कुछ कह रही हो। कविता को ध्यान आ गया कि वह अकेली नहीं, किसी समाजी जीव के साथ है। भावनाओं में बहकर नहीं. बुद्धि की पतवार से उसे चलना है। यह रात कितनी है?''

उत्तर दिया, ''कुछ नहीं बाबा? कुछ राम के स्वरूप पर विचार करने लगी थी।''

''बड़ी धर्मनिष्ठ हो?''

''सो तो नहीं, पर राम का नाम ही ऐसा है कि स्वरूप पर विचार करने को बाध्य कर देता है।''

''क्यों नहीं? तुलसीदास जी ने कहा ही तो है, ''सियाराम मय सब जग जानी, करहु प्रनाम जोरि युग पानी।''

''ऐसा जो सब जगतमय हो, उसके स्वरुप का क्या कहना!''

कविता ने स्वीकारोक्ति में केवल गर्दन हिला दी और चलने लगी। बुद्धि अब उसकी नलिन के विषय में सोचने लगी थी। चिंतातुर थी।

कीर्तन भजन का रंग-ढंग ही कुछ निराला था। शुद्ध सात्विक वातावरण स्थान स्थान पर राम, कृष्ण और अन्यान्य अवतारों के चित्रांकन

ओर उन पर भवद्भक्तों के पद खुद रहे थे। भित्तियां ही मानो राम भक्ति की शाखा बीसवीं सदी में रह गई हों। शिष्य मण्डल व्यायाम कर रहा था। सज्जन को संभ्रांत महिला के साथ आते देख एक-दो-तीन दौड़े आये और सामने खड़े हो गये।

'इन्हें बैठक में पहुंचाकर शय्या और भोजन का प्रबन्ध करो" महाराज बोले।

"जो आज्ञा महाराज।" एक शिष्य ने कहा और दूसरे की ओर देखा।

कविता देख न सकी, पर सज्जन ने देख लिया। घूर कर कहा—

"किशोर, मेरी आज्ञा का अक्षरशः पालन हो। उच्छृंखलता मुझे तनिक पसन्द नहीं, सब बातों की सावधानी बरतना। अतिथि हैं।"

किशोर ने कहा—"महाराज, आपके आतिथ्य प्रेम को धर्म संकट का सामना करना नहीं पड़ेगा निश्चिन्त रहें।"

वे चल दिये तो कहा उन्होंने—"सुनो, मिसरानी से कहना कि आज कीर्तन शीघ्र आरम्भ करें।"

"जी बहुत अच्छा।"

कविता यहाँ के वातावरण से अत्यधिक प्रभावित हुई। सोचा उसने प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा अभी पूर्णतः भंग नहीं हुई भारत की। गांव से एक दो फर्लांग दूर इस कीर्तन भवन के सद्व्यवहार में उनका अमरत्व संरक्षित है—अक्षय है।

इक्कीस

खा पीकर जब कविता अपने कमरे में बिस्तर पर जा आ लेटी तो कीर्तन आरम्भ हो चुका था। स्वामी जी बड़ी तन्मयता से गा रहे थे।

"तुमने जो किया, वह ही कौन-सा कम है। सात जन्म लेकर केवल नारी की सतीत्व रक्षा का पुण्य कमाया जाता है, समझे। फिर भी अगर कभी मुझे मदद की जरूरत पड़ी तो बिना हिचक के लूंगी, दोगे ?"

रामखेवन ने गंभीर हो कर कहा, "कविता बहन, पुरखों के पुण्य से तुम-सी देवी के दर्शन किये। जान की भी जरूरत पड़ी तो चूकूंगा नहीं।"

"तब फिर ठीक है। अब मैं चलती हूं।"

रामखेवन बोला, "तो वायदा किया न ?"

"कैसे ?"

"वही। मदद की जरूरत पड़ने पर मांगने का ?"

"हां किया।"

रामखेवन उठा और कविता को छोड़ आने के लिए उसके साथ चल दिया। प्रातः हो रहा था। गांवसे एक मील दूर पहुंचने पर कविता ने उससे कहा कि अब वापस चला जाय तो उसकी आंखों में आंसू आ गये। इतना ही कह सका "कविता बहन, रुक नहीं सकतीं ?"

"नहीं भैइया। जाऊंगी जरूर पर कभी...। अब तुम जाओ, नमस्ते।"

कविता आगे बढ़ गई तो रामखेवन खड़ा-खड़ा सोचता रहा, "किसी बड़े घर की बहू है। पति ने निकाल दिया है। कितने बड़े कलेजे और इज्जत वाली है। भगवान, किस वक्त पर तूने छल किया इसके साथ।"

कविता चलती रही। न उसे रुकने की इच्छा थी और न चलने की फिर भी चलना था, कहां तक क्यों, ? वह स्वयं नहीं जानती थी। चलते-चलते फिर सांझ आ गई।

"बेटी दिन ढल चुका है, अब रात में सड़क पर चलना खतरे से खाली नहीं। कहां जाओगी ?"

कविता ने सुना और मुड़कर देखा, एक लम्बे केशधारी धोती कुर्त्ता पहने व्यक्ति को देखकर बोली, "जाना तो दूर है बाबा।"

"फिर आज की रात यहीं विश्राम करो। मैं इसी गांव में राम कीर्तन कर रहा हूं। न सही आज साधू की कुटिया ही पवित्र करो।"

कविता खड़ी देखती रही।

बाबा ने फिर कहा, "मेरे जीवन का लक्ष्य यही है राम और उसकी लीला को सुनाकर भारत देश के निवासियों के जीवन को धन्य करना और अपने मोक्ष का प्रयत्न करना। चलेगी न ?"

कविता पिछली रात के अनुभव से व्यथित थी ही। सोचा कि फिर कोई आपत्ति आ पड़े तो इस परम धार्मिक व्यक्ति के घर पर ही आज की रात व्यतीत करूं। बोली, "जाना मुझे लखनऊ है बाबा। पैदल यात्रा कर रही हूं। चलिये आपको ही कष्ट दूं।"

"कष्ट क्या बिटिया यह तो सब मर्यादा पुरुषोत्तम की लीला है। मुझे भी अतिथि सत्कार करने का अवसर मिले और तुम्हें भी राम नाम का लाभ हो, चलो।"

कविता चल दी। सोच रही थी वह कहां तक चलूंगी आखिर, किसके पास…। नलिन के। नहीं। जय के। क्या वह पास बुला सकेगा ?

मन ने ही कहा, "पागल है। व्याभिचारिणी जिसके सामने सिद्ध हो चुकी, वह तुम्हें अब क्या मानेगा ?"

आत्मा ने कहा, "भाभी।"

मन बोला, मूर्ख है। इंसान समाज के नियमों से बंधा है। उसका अतिक्रमण जो करता है, उससे समाजियों का कोई संबंध नहीं रहता है। कोई रिश्ता नहीं, बंधन नहीं।

आत्मा ने कहा, "वह मुझे प्यार करता है, मेरे स्वरूप को पहचानता है, वह घृणा नहीं करेगा ?"

मन बोला, "वह आदमी कभी नहीं, जो दुश्चरित्र को अपनी भाभी

न बेच सकी, मैं अपनी आत्मा को पुनः समर्पित करने चला हूं, चल।

और……

मैं चल दूंगी—सोचते-सोचते कब उसकी झपकी लग गई। कुछ पता न चला। पता चला तब जब उसे महसूस हुआ कोई उसके मुंह पर हाथ रखे उसे दबा रहा है। वह चौंक उठी। किन्तु, किन्तु उसकी आखों पर पट्टी बांधी जा चुकी थी।

"कौन है?"

उसके वक्ष पर हाथ रखकर कोई दबोचने लगा—वह कांप गई।

"बोलो, कौन हो?"

आवाज नहीं आई। वह बन्धन में जकड़ती गई।

कविता दो क्षण चुप रही। शरीर एक बारगी सब कुछ ढीला छोड़ दिया उसने और····

और पावों के बल उचक कर लात मारी उसने और वह मुक्त हो गई। फौरन आंखों पर से पट्टी उतार चीख उठी वह "तुम?"

"हां!" स्वामी उसकी ओर लपका। कविता को पकड़ लिया। उसने। अबकी बार कविता ने दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध उसके मुंह पर मारी और चिल्लाई, "इस कीर्तन······भजन के पीछे······यह पाखण्ड। बचाओ।"

"कोई तेरी आवाज नहीं सुनेगा!"

"मैं कह चुका न कोई नही सुनेगा। सुनेगा भी तो आयेगा नहीं।"

कविता की साड़ी पकड़ कर उतारने लगा वह साधु नामधारी कीट।

कविता द्वार की ओर लपकी। भाग्य से वह खुला था। वासना उन्मत्त ने इतनी सावधानी बरतने की आवश्यकता नहीं समझीं थी कि उसे बन्द कर दे।

द्वार खोल कर जब वह भागी तो साड़ी उसके हाथ में ही थी। फिर भी वह भाग ही गई। स्वामी पीछे-पीछे साड़ी पकड़े-पकड़े।

वह नंगी हो गई। नारी निर्वसन एक कीट द्वारा। वह तब भी भागती ही रही। जंगल की ओर।

जंगल और अंधेरी घिरी बादलों की रात। वह भागे गयी। भागती-भागती एक जगह टकरा, देखा खाई थी। गिरकर वह लेट गई। सांस रोकने के लिए वह मुंह पर हाथ रखे रही।

स्वामी हाँफ़ता-हाफता आगे को भागा चला गया।

वह लेटी रही। निर्वसना, निर्लज्ज। माटी की पुतली माटी के ढेर में लिपटी पड़ी रही। शायद माटी वस्तु, महिमा को ढके।

दूर किसी गांव में नक्कारे की आवाज आ रही थी।

वह पड़ी सोचती रही, "यही भारत भूमि है? संस्कृतियों की संगम स्थली और गौरव की गरिमा गंगा। यही हैं इस धरती के पुरुष निरे दरिन्दे। पशु, भेड़िया, इंसानी मगरमच्छ।

"यही चरितार्थ रूप में प्रसाद की श्रद्धा का

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

"किसी मूर्ख की कविताए हैं वे सब

यथार्थ से दूर।

मीलों, युग्म दूर।

नलिन, वह अरुण और वह स्वामी। सब आदम की औलाद ही तो है पर······

जय और रामसेवन भी तो इसी धरती के हैं?

टप···टप···टप···ट···ट···ट···टप।

घोड़ो कीं टापों की आवाज से जंगल की नीरवता चौंक उठी। कविता को लगा—एक दरिन्दा और आया। वह सहम कर सिकुड़ गई।

उफ्!

चूड़ियों को भी अभी खड़कने का मौका मिला था।

"कौन है?" आवाज आयी और बैटरी की रोशनी उसके शरीर

"बन चले राम रघुराई"
आगे आगे लक्ष्मण भ्राता,
पीछे जानकी माई।
बन चले राम रघुराई।"

कविता उनकी स्वर लहरी उनकी आत्मा के साथ भाव-तादात्म्य से विभोर हो उठी। जी चाहा कि चलकर वह भी कीर्तन या रामगुण जो भी गाया जा रहा है उसका श्रवण करे। किन्तु थकान और अपरिचित स्थान की अनुभूति ने वहीं रहने की सलाह दी।

स्वामीजी अपने गाये पद का भाव समझा भी रहे थे। कविता को अपने राम की याद फिर हो आई। नलिन उसके कल्पनालोक पर फिर छा गया।

कितना भी बुरा करने को कहा उसने मुझसे, परन्तु जय से वे न जाने क्यों डरते थे। उसके सामने कभी वास्तविक परिस्थिति नहीं आने देते थे क्यों?

उसमें भी इससे सिद्ध है कि मनुष्यता असत और विश्वास की भावना थी। परिस्थितियों और······

कितनी ही भीषण परिस्थितयां थीं, फिर भी पति का अपनी पत्नी को व्यभिचार के लिए तत्पर करना न्याय, परंपरा और सत्य के इतिहास में कहाँ आया है। किस सिद्धांत और कटु से कटु यथार्थ के दिग्दर्शन में यह रीति सिखाई गई।

पति परमेश्वर है, परन्तु उसका भी अपराध क्षम्य है।

उसी का तो। वह यदि नारी को दूसरे के हाथ बेचकर अपना अधिकार भी बेचना चाहे तो...

परन्तु क्योंकि कविता उस अधिकार को बेच नहीं सकी थी. इसलिए इस सब के बावजुद भी सोचती रही······

उनके चरणों में अब तो पड़ूंगी नहीं, और किसी के चरण चूमूंगी नही, फिर······

स्वामी जी का कोई शिष्य गा रहा था—

"प्रभु मोहे अपने चरण में ले लो,
दीन दुखी पर मन तुलसी को,
कमल चरण में ले लो,
प्रभु मोहे अपनी शरण में ले लो।"

कविता ने सुना और उसका मन भगवद्भक्ति की ओर गया।

स्वामीजी भक्तों को समझाने के बाद एक सम्मोहित पूर्णता में गाने लगे थे—

"अस्थि चर्म मय देह मम,
तामें ऐसी प्रीति,
जो इतनी श्रीराम में,
होत न तब भव भीति।"

कविता को लगा—उसकी परिस्थिति पूर्णतः विपरीत है।

तो क्या वह भी श्रीराम में, उनकी साधना-कामना का दिया समर्पित कर दे उन्हीं के चरणों में।

नहीं-नहीं-नहीं। इस जीवन में तो नलिन के ही चरणों का स्मरण कर वह अपना जीवन काटेगी। अन्तिम सांस तक।

"कागा सब तन खाइयो,
चुन चुन खाइयो मांस।
दो नयना मत खइयो,
मोहि पिया मिलन की आस।"

शराबी, जुआरी और व्यभिचारी—व्यभिचार का क्रेता-विक्रेता, कम है श्रीराम से या अधिक—? बुद्धि ने उसे झकझोरा।

हां, हां, हां, वही मेरा पिया है।

और पड़ी यही सोचने लगी—एक दिन वे आ जायेंगे, सब संसार को खोज मेरी किसी शून्य कुटिया पर—

चल कविता, मैं तुझे लेने आया हूं। तू मेरे कहने से आत्मा को

बाईस

कुमुद की तबियत खराब हुए तीन दिन बीत चुके थे। हर समय बुखार रहता था उसे। मां उसकी काफी कह चुकी कि दवाई खाये मगर न वह दवाई खाती थी और न कुछ ?

रात को जब मां सोने लगी तो मां ने कहा, "इस तरह कुछ खायेगी नहीं कुमुद तो काम कैसे चलेगा। दवाई कल सबेरे सें जाकर जरूर ले आना।"

कुमुद ने हंसने का प्रयत्न किया। नेत्रों में वह दीप्ति न आ पायी थी जो मां को अभिष्ट थी। बोली "मां उपवास से दो लाभ हैं। एक तो रोग जाता रहता है और पेट की बीमारी दूर हो जाती है दूसरे देवता प्रसन्न होते है।"

मां बड़बड़ाई "तू तो सदा ऐसी ही बातें करती है। अब जमाना बदल रहा है, यह समझती नहीं।"

कुमुद ने चुटकी ली, "तो क्या जमाने के साथ देवता का भी स्वभाव बदल रहा है मां। वह भी अब बिना उपवास के खुश हो जाते हैं। फिर तुम क्यों करती हो ?"

'मेरा क्या मैं तो पुराने जमाने की हूं। पर तू तो नहीं है ?"

कुमुद ने गंभीरता से कहा, "नहीं मां, मानने और करने की बात है। कोई भी बात जो चली आती है, बिल्कुल गलत नहीं। जैसे ये नये आदमी बताते हैं, मगर क्योंकि उसमें कष्ट होता है, इससे करने की हिम्मत नहीं पड़ती।"

मां चुप होकर लेट रही। बहस में जानती थी कि पार न पा

सकेगी फिर लाभ क्या ?"

कुमुद पड़ी-पड़ी सोचती रही। रह-रह कर उसके नयनों के आंगन में आकर जय खड़ा हो जाता। वह बहुत चाहती वह अंतिम दृश्य भूल जाय जो जय के जाते समय का था, पर न भूल सकी। सब कुछ उसकी स्मृति में साकार हो स्पष्ट हो गया।

कुमुद लेटी-लेटी उस घड़ी की कल्पना में खोयी थी, जब उससे आखिरी विदा लेकर वह गया था।

जय घबराया-सा, जब वह काफी रात गए बाहर से आया था। कुमुद उसके कमरे में ही थी। आते ही उसने अपनी अटैची में कपड़े रखने शुरू कर दिए और कुमुद से बोला, "तूने बताया था कि मुझसे पहले वाला किरायेदार ··· तेरे ··· आज मैं भी जा रहा हूं बता क्या छीनूं तेरे से।"

कुमुद क्षण भर को अवाक रह गई। सहम कर कहा, "क्या बकते हो। कभी तो काम की बात किया करो। मैं अब तुम्हें परेशान न किया करूंगी। धोखे में न रखूंगी।"

'पर बेकार। मैं वाकई जा रहा हूं। बता क्या देगी मुझे?"

'नहीं, तुम नहीं जा सकते।"

"जा रहा हूं।' जय ने अटैची उठाली और चलने लगा।

"कब आओगे ?"

"कभी नहीं।"

"तब नहीं जा सकते।" कुमुद ने उसे सामने से रोक लिया।

"इतनी गिरी मैं तुम्हारी नजरों में। यहीं रहो। नहीं आऊंगी तुम्हारे कमरे में। बस। लो चली।"

"सो बात नहीं।"

"कैसे नहीं। जब से मैंने यह बात तुम्हें बतायी है। तुम बोले तक नहीं। मुझसे नफरत हो गई। इसीलिए मकान से जा रहे हो। पर मैंने अपना ही तो सब दे दिया है। तुम्हारा तो जबरदस्ती नहीं छीना,

पर पड़ी और दूसरे ही क्षण ठीक हो गई।

"बहिन—" एक कपड़ा उसके ऊपर आकर गिरा। "इस मेरी पगड़ी से शरीर ढंक लो और बाहर आ जाओ।"

कविता बाहर निकली। आवाज आयी—"कैसे आयी यहां? किस तरह हुआ यह सब"

कविता चुप रही।

"बोलो। मुझसे डरो मत।"

"अपने पुरुषपन से पूछो, जो—" कविता कह न सकी।

"क्या हुआ! तुम्हारी लाज पर आज किसकी कुदृष्टि पड़ी।"

कविता ने कहा, "तुम्हें मतलब? तुम्हारी—"

"बहिन, सब अंगुलियाँ एक जैसी नहीं होतीं। तुम बताओ किसने दुख दिया।"

कविता ने कुछ न कहा। "अगर तुम्हें वास्तव में सताया गया है तो उसका नाम बताओ, वरना, वरना मैं तुम्हें ही गोली मारे देता हूं।"

"मुझे गोली मार दो और उसका नाम भी सुन लो।" कविता कहती रही—

"यह जो कीर्तन भवन है, उसका स्वामी।"

वह आवाज गरज उठी, "तुम्हें सौगन्ध है अपने नारीत्व की, यहीं रहना मैं अभी लौटा?" टापें—टप टप टप—।

टापें फिर बज उठीं। दूर होती गई। १५-२० मिनट बाद ही घोड़ा फिर कविता के पास आकर रुक गया। एक धड़ाके के साथ नीचे गिरा कुछ और बैटरी जल उठी।-

"यही है?"

"हां"

"अब कहो, क्या किया इसने?"

दूर से जनस्वर की आवाजें आ रही थीं "पकड़ो, मारो।"

"मार दूं इसे?"

"नहीं"

"क्यों ?"

"मेरा स्वभाव नहीं।"

"यह इस शरीर से संसार को छलता है।"

"मैं छली गई इसके वेश से। शरीर से नहीं।" कविता बोली।

"तो अब मारो, लो।" रिवाल्वर बढ़ाया उसने कविता की ओर

"नहीं।"

"अच्छी बात है। फिर आगन्तुक बोला "बाबा, भूल गये तुम रनबीर भी इसी इलाके में है। एक औरत को बलात व्यभिचार के लिए बाध्य करना, नारायन।"

गोली छूटने को हुई।

"माफ कम दो।" दोनों हाथ उठ गए।

कविता ने भी कहा, "छोड़ दो।"

"नहीं।" रनवीर गरज उठा, "औरत क्योंकि मां है, इसलिए अपनी अस्मत के लुटेरे को माफ कर सकती है। रनवीर नहीं।"

"फिर नहीं करूंगा गलती।" बाबा जी बोला।

"तू, जिसने नंगी औरत पर भी दया नहीं की। इसे देख भी नहीं लजाया, वह गलती नहीं करेगा ?"

जनरव और स्वयं जनसमुदाय निकट आता जा रहा था, रनवीर की गोली तीन बार धांय धांय चली और......

"आओ मुझे हाथ दो। बैठो घोड़े पर विश्वास हो तो, वरना।"

"मुझे भी मरवाओगी क्या, आओ।"

स्वयंमेव कविता का हाथ उसके हाथ में चला गया। उसने ऊपर खींचा। घोड़ा फिर भाग खड़ा हुआ।

कविता के भाग्य का एक नया घोड़ा।

नई लगाम कसे।

जय का हृदय भर आया था, "कुमुद तू नीचे जा। मैं फिर आऊंगा।"

"क्यों ?"

"मैं कहता हूं।"

"अच्छा।"

कुमुद चल दी तो जय ने कहा, "पैसे लेता मगर इसलिए नहीं ले रहा कि पिछले मकान के किरायेदार की तरह मैं भी तेरी नजरों में धोखेबाज न रहूं। दुखी मत होना।"

कुमुद की आंखें फिर बहनें लगीं। इसके बाद जय चला ही गया। जय के चले जाने के बाद बुखार की पीड़ा को भूल उसने तकिये के नीचे से फिर डायरी निकाली और पढ़नी शुरू कर दी।

तेइस

यह स्थान गाँव से लगभग दो-तीन फर्लांग दूर है। हफ्तों हो गए चलते-चलते, पांव में फफोले पड़कर फूट गए। ठीक भी हो गए। अब तो चलने की आदत भी पड़ गई है।

पर भूखा ?

पीपल की छाया आज भूख, प्यास और मकान तीनों का निराकरण करेगा।

पर...।

दन...दन ...दन...दनादन।

नक्कारा बज उठा गांव में। मैं भी सुनूं।

नहीं।

मैं नहीं जाऊंगा। मैं थकान से नहीं। दाढ़ी और मुछें बढ़ ही गई हैं। कोई बच्चा डरेगा, आदमी शक करेंगे। चोर डकैत तो नहीं ?

"गुजरा है एक बादशाह बीच चमन दरम्यान।

फारिस में मशहूर था खुदा दोस्त सुल्तान।"

खुदा दोस्त सा गीत खिलेगा कोई गायक और कोई अभिनेता है। स्वर अन्तर में बैठते चले जा रहे हैं (अब नहीं रुका जायगा। पर, मैं जाऊंगा नहीं।)

दनदना दन—डम—डम—डम। नक्कारा बजे जा रहा है। स्वर में स्वर मिले जा रहे हैं। रस छलक रहा है।

उफ, कितना सुमधुर स्वर। और जीवन जागरण का यह सन्देश। इसे अगर कोई समझे तो एक बुद्धिशील मस्तिष्क का श्रीगणेश हो। जाऊंगा।

बच्चे हंसेंगे—

डकैत—बावला—बावला—?

पितृत्व अपनी वाणी के उच्च स्वर एक गंवई गंवार के मुंह से बोल रहा था। सिने की फोटोग्राफी, उच्च शिक्षा की अनुमति और वृद्धीवन व्याख्या की प्रतीति से सम्बन्धित महापुरुष के मुख से नहीं। मैं भी चलूं।

सुन।

पांव में पीड़ा है।

नहीं, मैं नहीं जाऊंगा।

झपकी आ रही है सोनी! ओ सोनिये···याद रखना!

आंखें भारी हो गई। लेटता हूं।

क्या हुआ होगा मेरी मां का। सोनी का क्या हुआ होगा? क्या किया होगा समाजी दरिन्दों ने उसके साथ व्यवहार। वह मेरे साथ

छीन भी नहीं सकती। कसम तुम्हारी अब कभी भी तुम्हारे कमरे में।"

जय ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, "ऐसा न कहो कुमुद। मैं इस कमरे से जा रहा हूं। पर तेरे कारण नहीं।"

"फिर क्यों जा रहे हो?"

"बाद में बताऊंगा।"

"जब आओगे ही नहीं तो बताओगे क्या?"

जय चक्कर में पड़ गया। बोला, "कोई खास बात नहीं है कुमुद तो भी तुझसे मिलने एक बार आऊंगा अवश्य।"

"न आये तो? रुक ही क्यों न जाओ।"

जय ने अनुभव किया कि उसे स्वर आग्रह और सरसता के साथ जो तत्व मिला है वह वेदना और आंसुओं से आने वाले बादल की प्रतिछाया का है। कहा उसने "कुमुद मैं जाऊंगा जरूर। लेकिन याद रखना तेरे सिवा आज दुनिया में रहा कोई नहीं मेरा, जो मुझे अपना सके।"

"मैं हूं। तब फिर मेरी बात मानो। न जाओ।"

"सो नहीं हो सकता। जाऊंगा तो मैं अवश्य। झूठ फरेब और धोखे से भरी इस दुनिया में अब जो करना है, करूंगा ही। किसी मोल पर नहीं रुकूंगा।"

"पर करोगे क्या?"

"जो आज तक नहीं कर सका। तुम सबके मोह में। तुम्हारे कविता और नौकरी के पैसों के बीच मैं बेकार था। अपने आपको कुछ न दे सका। अपने मन को छलता रहा। पर अब नहीं।"

"तो मेरे पैसों पर तुम बिके।"

"नहीं तो क्या? जो काम मुझे करना चाहिये था, जिसके लिए आत्मा सिसक रही है, वह इस लिए शुरू नहीं किया कि पैसों के बिना संभव नहीं। कुछ करना चाहा तो पैसों का आसरा लेकर। खैर छोड़ो न आज मेरे पास पैसा है न आज के बाद कुमुद और कविता साथ होगी नौकरी छुट चुकी है, अब तो करना ही पड़ेगा नहीं तो भू...।"

कुमुद की आंखें बहने लगी थीं, "तुम मुझे समझ नहीं सके मेरे पास पैसे हैं और तुम बिना पैसे जाओ ? भूखे रहने की बात जबान पर लाते लाज नही आती ?"

"वे मेरे किसी काम के नहीं ।"

"मैं ही तो नहीं, पैसे तो हैं । पाँच हजार दे दूं । क्या काम करोगे ?"

जय हंस पड़ा "मैं साथ नहीं ले चलूंगा तुझे ।"

"मत ले चलना ।"

"फिर आऊंगा नहीं ।"

"मैं...मत आना ।"

"फिर भी पैसे देगी ?"

"हां"

आज जय ने पहली बार स्वेच्छा से उसे खींचकर बांहों में ले लिया, फिर भी पैसे नहीं लूंगा कुमुद । क्योंकि उनसे मेरा काम हो नहीं सकेगा ?

"क्यों नहीं ?"

"तू समझेगी नहीं ।"

"जिस दिन कुछ करूंगा उस दिन इतनी दुखी न होगी, जितनी आज है । अच्छा चला ।"

"तो नहीं आओगे !"

"सो क्यों नहीं, कह तो दिया । एक बार आऊंगा ।"

"बस एक बार ।"

"हां, उसके बाद आने की जरूरत न रहेगी ?"

"क्यों ? इतनी बुरी हूं ।"

"हां" कहकर जय चल दिया कुमुद ने आगे बढ़कर उसके पांव छू अपने माथे से हथेली लगा ली । बोली । "आना या मत आना । मैं जिस काबिल थी......फिर भी मुझे माफ कर देना ।"

मेला देखने चली गई थी। बस इतनी-सी बात। मेरे शरीर पर इतने घाव। इतनी पीड़ा…।

उसका विवाह हो जायगा। फिर सब ठीक हो जायेगा।

उफ्। नक्कारा…यह दन…दनादन…।

"बच्चों ने बहके-बहके यूं ही मुझसे करा कलाम,

जल्दी कदम बढ़ाओ कि होने को आई शाम।

हम गमज़दों को एक दिन कर देगा शादकाम।"

यह तो बड़ी ऊंची बात है। बड़ा सन्देश है। मालूम पड़ता है इसे मेरे लेटे रहने का पता चल गया है। यह नहीं लेटने देगा। कह रहा है—'जल्दी कदम बढ़ाओ कि होने को आई शाम।"

और आ रही है। दिन प्रतिदिन जिन्दगी की शाम निकट आ रही है। चलता हूं। अब रात में भी नहीं रुकूंगा। बहुत घूमना है इसके बाद।

ऋणी हूं तेरा, ओ ग्राम्य जनता के चारण……अभिनेता तेरा ऋणी हूं।

तेरा सन्देश याद रहेगा।

अब न जाने कहां लेटने-सोने को छाया मिलेगी।

पीपल तरु। नक्कारे की ध्वनि। अनिल के प्राण ?

विदा !

मैं चला।

उधर कुमुद की पलकें भाव-विभोरता में गल कर तंग हो गई। आंखों को दीखना बन्द हो गया। बदलियाँ बहुत घिर आयीं। आकाश मेघाच्छादित……

डायरी बन्द कर वह भी सोने का उपक्रम करने लगी।

चौबीस

रनवीर के वास्तविक रूप पर कविता को जितना आश्चर्य हुआ, उतना आज तक किसी पर न हुआ था। जब उसके सामने ही साधु को मार कर वह घोड़े पर बैठने को उससे कह रहा था। उसका मन उथल-पुथल कर रहा था। इतना वह समझ गई थी कि वह डाकू है और नारी के प्रति श्रद्धा, विनीत और गौरवान्वित अनुभूति से ओत-प्रोत। परन्तु उसके घर आकर और यह देखकर कि दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम० ए० करने वाला गोपाल राठौर अपने इलाके में सम्मानित और प्रतिष्ठित जमींदार है, वह आश्चर्यचकित रह गई। जमींदारी खत्म होने से तीन साल पहले ही अपनी जमीन गांव के लोगों को—जो जोत रहे थे—और गवर्नमेंट की डिप्टी कलक्टरी को लात मारकर यह डाके-जनी का पेशा कर रहा है। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। घर के किसी भी सदस्य को उसके इस रहस्य का पता न था।

जब वह उसके साथ उसके अड्डे पर कपड़े बदलकर घर में घुसी तो देखते ही उसकी मां कह उठी थी, "कहां रहा रे रात भर ? बिना कहे ही चला गया था आज और······"

कविता पर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने पूछा, "यह कौन ?"

"तुम्हारे समाज द्वारा एक त्रस्त महिला है, बस······"

"अच्छा-अच्छा।" माँ ने कहा और भीतर खाट पर दूध बिठा पिलाने के बाद पूछा, "क्या नाम है बेटी तुम्हारा ?"

"कान्ता।"

"पढ़ी-लिखी हो ?"

"हां।"

"कितनी ?"

"स्कूल की पहली श्रेणी और पुस्तकों के तुलसी और शेक्सपीयर।"

"बड़ी अच्छी। यही असली विद्या है। तुम मेरे पास रहोगी न ?"

कविता चुप रही।

"मेरा मतलब यह है बेटी कि गोपाल जिसे जो सहयोग देता है, मानवोचित ही देता है। तुम उसे ठुकराओगी तो नहीं ?"

'समाज व्यक्तियों का समुदाय है बेटी। सब व्यक्ति इसी प्रकार अलग हैं, जैसे आकाश। प्रत्येक वस्तु का वहाँ एक स्वतन्त्र और लाभ-हानिप्रद अस्तित्व है। फिर नाम है। केवल आकाश। फिर व्यक्ति को भी इसीलिए दोषी नहीं कहा जा सकता कि वह समाज का अंग है।"

कविता चुप ही रही उसने फिर कहा, "मेरा अर्थ यह भी नहीं कि समाज गलत है और व्यक्ति ठीक। वस्तुतः न समाज गलत है और न व्यक्ति। दोनों का अनुचित आग्रह गलत है। क्योंकि अधिकांश व्यक्ति आज दुराग्रही, स्वार्थलिप्त, शोषणग्रस्त हो···अविद्या के अन्धकार में भाग रहे हैं। इसीलिए मुझे यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि उनकी मान्यताओं पर आधारित यह समाजी नियम और परम्पराएं ठीक नहीं हैं।"

अब कविता बोली, "मां जी, न मुझे समाज से शिकायत है और न व्यक्ति से। मुझे तो यदि किसी से शिकायत है तो उस अन्धभक्त भारतीय नारी से है जो पति को परमेश्वर मान उसके चरणों में सर्वस्व को समर्पित कर रही है

"उस पाषाण पुरुष से है, जो उसकी भक्ति को दासता मान अपने अहंकार के मद में उसे केवल तुच्छ शरीरी तृप्ति का साधन और रसोई का गुलाम मान रहा है।"

"तो क्या तुम यह नहीं मानतीं कि पति परमेश्वर है ?"

"नहीं मानती तो आज इस दशा को क्यों पहुंचती माँ जी। मैंने

तो पति को परमेश्वर सुना, पढ़ा और माना है। अन्यथा इन समाजी दरिन्दों के बीच इस मान्यता को यदि आज की नारी त्याग दे तो आपको विश्वास आयेगा कि इस जवानी और सुन्दरता के दिनों में··· मैं आपकी शरणागत बनूंगी।

गोपाल की माता का हृदय सिसक उठा। गोपाल पास ही खड़ा था। बोल, "मां, छोड़ो इन बातों को। तुम्हारी कोई लड़की नहीं थी, आज हो गयी। इसे पाठ पढ़ाओ कि गोपाल की जमींदारी में, शरणागत हुआ ही नहीं जाता, यहाँ तो सहयोग और सह-श्रमदान के आधार पर मानवीयता के तापों को विस्मरण अमरत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, बस।"

मां ने कहा, "पर इसने तो अभी अपने को मेरी लड़की नहीं माना है न ?"

"मान लिया माताजी ! मोहन···गोपाल भइया की बात और आपकी आज्ञा मानकर मैं शेष जीवन व्यतीत करूंगी। यह मैंने निश्चय कर लिया है।"

"तो मैंने पुत्री गोद ली है।" बाद में कविता का हाथ पकड़ उसे वक्ष से लगा वह बोली, "जन्म भर की साधना थी कि मैं किसी को अपनी बेटी कह सकूं। गोपाल बहन कह सके। आज वह इच्छा पूरी हुई।"

कविता ने सुना और मातृस्नेह से पुलकित हो वह उसके गले से चिपट गई। अनुभव करती रही कि मानव मन में अभी जीवन और जागरण की इच्छा शेष है।

पच्चीस

रात्रि को उत्सव के समय सारे गाँव के लोग एकत्रित हुए। ग्राम्य उत्थान के विषय की आलोचना करते हुए ग्राम्य प्रधान किशोरी रमण राठौर ने 'सरदार भगतसिंह' नाटक का उदघाटन किया। यह समारोह कविता को गोद लेने की खुशी में गोपाल की मां की ओर से हो रहा था।

नाटक में विशेष कुछ हो, ऐसी बात नहीं थी। उत्कृष्ट अभिनय और सुन्दर निर्देशन कविता ने अनेक बार देखा था, किन्तु उसे यहां जो बात छू गई वह यह थी कि गांव के ही सब स्त्री पुरुष कलाकार थे और नाटक पर व्यय केवल गोपाल राठौर का न होकर सारे गाव का हुआ था। कविता को कम से कम दो-तीन हजार रुपये भेंट में भी प्राप्त हुए थे। जो कविता की इच्छानुसार गांव में एक एक ट्यूबवैल के निर्माणार्थ चन्दा स्वरूप तीन हजार रुपये गोपाल राठौर की मां की ओर से दे दिए गए।

सब समारोह समाप्त हुआ तो घर आकर सोने के बजाय कविता सीधे गोपाल के कमरे में चली गयी। बैठ कर बोली, "सोने से पहले आज मैं तुम्हें जान लेना चाहती हूं। इतनी जल्दी मेरे आने पर यह सब आखिर क्या हो रहा है? मैं किसकी बहिन हूं? रनवीर की या गोपाल राठौर की?"

गोपाल हंस पड़ा, "कान्ता! पहले बाहर निकल कर यह देखो कि मां तो आसपास नहीं है। फिर···"

"अच्छा कह कविता ने इधर-उधर देखा और फिर आ बैठी "बताओ।"

गोपाल कहने लगा, 'देखो कान्ता, यह सब कुछ, जो यहां हुआ है, इसके आधार पर तुम निःशंक कह सकती हो कि तुम कुंवरानी जग-

मती की बेटी हो परन्तु···।'

"परन्तु क्या ?"

"बहन का जहां तक प्रश्न है, तुम रनवीर की ही हो ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैंने तुम्हें रनवीर की बहन के रूप में ही पाया, गोपाल की नहीं।"

"परन्तु वह डाकू रनवीर तो बहुत दुस्साहसी, लुटेरा और बर्बर है।"

"तो क्या हुआ ? तुम्हारा तो भाई है।"

कविता चुप रह गयी।

गोपाल ने फिर कहना शुरू किया, 'सुनो कान्ता। मैं एम.ए. करने के पहले से ही कुंवर गोपाल राठोर था और डाकू रनवीर भी। जब पकड़ कर इस गांव में आया तो जीवन में क्रियात्मक कार्य करने की जो महती इच्छा जी उसके लिए डाकू रहना ही अच्छा था। तुम पूछोगी क्यों ? वह इसलिए कि मैं कभी स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकता कि धनवान सहृदय होता है सच्चरित्र और सद्‌गुणसंपन्न होता है। मैं जानता हूं कि ४० करोड़ भारतीयों में से ६५ प्रतिशत भूख प्यास से बैचैन हैं और ये पाँच प्रतिशत······।

ये अपने धन मान। मर्यादा को दांव पर रखकर उन ६५ प्रतिशत के जीवन का रस चूस रहे हैं। साम, दाम, दण्ड, भेद की चारों नीतियों द्वारा। न इनकी दृष्टि में उनका कुछ सम्मान है और न महत्व। उन्हें अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में केवल इतना ही स्थान दे देना चाहते हैं जितना किसान बैल को देता है ।

कुछ रुक कर कहा उसने, "बैल को भी किसान प्रेम करता है। यूं कहो कि जितना मदारी बन्दर को प्रेम करता है। अपने इशारों पर उसे नचा अपना सुख लाभ प्राप्त कर ये उसे कुछ देते हैं। केवल जीने भर का योगदान और वह भी उसके मान-मर्यादा, लाज-धर्म और कर्म

सब कुछ खरीद कर।

"फिर इनका प्रतिकार क्यों न किया जाय। पांच प्रतिशत के लिए ६५ प्रतिशत को दुखी देखना मेरे बस की बात न थी न है।"

'यही सब कुछ सोच और अपनी ममतामयी मां, जिसने मुझे मानवता के अर्थ बता, उसे अपने योग्य बनाया, की इच्छा पर तुषारपात न होने देने के लिए मैंने ये योजनाए एक साथ चलायीं। जब तक जिऊंगा इन पूंजीपतियों से छीनूंगा और नृशंस और अमानुषों का वध करूंगा। न्याय की दुहाई देकर नहीं, अपनी शक्ति से। अपनी सामर्थ्य से।

कविता ने कहा, "परन्तु भइया यह मार्ग हिंसा का है।"

कुछ आक्रोश में कह उठा गोपाल, 'अहिंसा क्या है? वही क्या जिसने भारत को स्वतंत्रता दिलाई?"

"हां!"

"तो फिर मैं उस अहिंसा का शत्रु हूं कान्ता! जहां लोगों ने दूसरों के धन से छल किया, उनका शोषण किया, वहां इतिहास के हर पृष्ठ पर तुम पढ़ोगी कि कुछ आदमी ऐसे रहे है, जिन्होंने बुद्धि से छलना से और अशक्य वातावरण की सृष्टि से आम जनता को चूसा उसका रक्त पिया।

"उन्हीं में से कुछ लोगों का आज के भारत में प्रसिद्ध नारा है, "अहिंसा..."। पर क्या भारत को वास्तव में अहिंसात्मक आन्दोलन से स्वतत्रता मिली है।"

"यदि हां तो कहां गए सन् १८५७ के शहीद। लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, और नाना साहब, किस वेदी की आहुति पर चढ़े। आजाद, भगत, भगवती और अनगिन शहीदों का रक्त किस लिए बहा। १८५७ से लेकर आजादी के अन्तिम चरण तक जो रक्त की नदियां भारत में बहती रहीं जिनमें द्वापर युग का यदुवंशी कृष्ण, स्वातंत्र्य समर का सेनानी सुभाषचन्द्र बोस, डूब गया, वह क्या अहिंसा ही थी?

"अहिंसा के नारों पर जो असंख्य हत्याएं और गोलीकाण्ड हुए, मां बहनों की लाज लूटी गई, देश के कोने-कोने में शरणार्थियों की चीत्कार, अबलाओं का करुण क्रन्दन और असहाय बहनों के सतीत्व-मर्दन के समय की सहाय्य-याचनाएं, संवेदना की मरणान्तक पीड़ा लिए सुनी गईं, वे कहां जायंगी।

'कान्ता बहन, आजादी का मोल तो चप्पा-चप्पा भूमिको रक्त रंजित कर उन्होंने पाया है जो यहाँ के शासक थे।

'जो अपने विरुद्ध सर उठाने वाले सन् सत्तावन के क्रान्तिकारियों को फांसी के तख्ते पर चढ़ा, बुनकरों और श्रमशीलों के अग-भग कर सन् ४२ तक ताकत का प्रयोग करते रहे वे ४७ में अहिंसा के बल से चले गए। यही न ?

"मैं नहीं मानता। देश को दो टुकड़ों में विभाजित कर सत्ता के भोगी जिन अहिंसावादियों ने भारत की भूमि स्वतंत्रता के बाद भी खून से रंगी देखी और कुछ न कर सके, उसके सिद्धान्त को मैं नहीं मानता। इसीलिए मैं डाकू हूं।'

कविता गोपाल की बात ध्यान से सुन रही थी। उसके चुप होने पर बोली, "पर यह कानूनी अपराध है ?"

'मानता हूं। यह भी मानता हूं कि प्रमाणित होने पर मृत्युदण्ड का भागी होऊंगा। तो क्या हुआ ? फांसी का तख्ता बस !'

'बहुतों ने देखा है, देखते आये हैं और प्रचलित कानून का जो विरोध करेंगे। परन्तु जो मुझे देखना है, वह कानून नहीं। मनुष्यता है। मैं जानता हूं कि मैं जिन्हें मार रहा हूं, वे रोज हजारों को मार रहे हैं, उनकी दृष्टि में धर्म पाखण्ड का मन्दिर, मर्यादा···इच्छा की पूर्ति और समाज उसका प्रतिपादक संघ है।'

"तुम्हीं बताओ जो धर्म और मोक्ष का देवता तुम्हारे सतीत्व से खेला था, कानून की शरण लेने पर पहले तुम्हें अदालत में बयान देना होता, तब कहीं···वह फिर भी छूट सकता था।"

"उसके पीछे अन्य भक्तों की भीड़ होती, और पाखण्डियों का जमघट। तुम्हारी पुकार कारागार की दीवारों टकराकर दम तोड़ती होती उसकी नहीं। वह चीख-चीखकर कहता—मेरे सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ आचरण के साक्षी हजारों लोग हैं।"

'और तुम्हारे ?"

"तुम्हारा साक्षी कौन कान्ता ? वह जंगल की धूल। खाई और बदलियों से घिरा आकाश। पत्थर का देवता।"

"नहीं मैं क्षमा नहीं कर सकता। हां, यह मानकर कि तुम रनवीर को भाई नहीं बना सकतीं। आज जीवन में पहली बार अन्तरवेदना हुई। अपना मूल्य कम समझकर पश्चाताप हुआ। ठीक है, पर अब तुम जाओ और सोओ।"

कविता ने साँस रोककर धीरे से कहा, "रनवीर मेरा भाई नहीं, कैसे मान लिया तुमने। एक ही तो भाई है मेरा। उसे ही छीन रहे हो गोपाल।"

"सच !"

"हां, सच भइया। तुम्हारी इस मीमांसा से एक नयी बात सोचने की प्रेरणा मिली। फिर यह सहकारी कार्यक्रम ?"

"यह मेरा दूसरा प्रयोग है—धन लाता हूं और प्रयत्न करता हूं क उसे इन ग्रामीणों में इस प्रकार वितरित करूं, कि यह अस्वीकार न करें। सब एक साथ मिलकर खायें, पीयें और जीवन के पथ पर पांव से पांव, वक्ष से वक्ष और हृदय से हृदय मिलाकर बढ़ें।"

"तुम्हें पाकर मुझे एक शान्ति, मिली। शीघ्र ही तुम्हें यहां की योजना की संचालिका बना, इस गांव को आपद्मुक्त कर अपने स्वप्न की पूर्ति में किसी फांसी के तख्ते पर लटकने की मैं राह देखूंगा। ताकि मेरे फांसी लगने पर कार्य यह कह कर न रुके कि इस योजना में जो धन लगा, वह अनधिकार द्वारा प्राप्त था।"

"परन्तु मैं तो निरी · · · · "

"बोलो मत कान्ता! तुम कितनी निरीह हो, मैं समझ गया। विश्वास हो गया है कि यह सब तुम संभाल सकोगी। अच्छा अब सोओ। मैं कल मिलूंगा।"

चलते समय कविता ने कहा, "पर भैया, यह तो मैंने तुम्हें बताया ही नहीं कि मां की बेटी का नाम कान्ता वैसे ही है, जैसे बेटे का नाम गोपाल, रनवीर की बहिन का नाम कविता है।"

"अच्छा!" गोपाल बोला, "ए कविता, दरवाजा बन्द करती जाना।"

छब्बीस

"नहीं चलेगी तू डाक्टर के यहां?"

"नहीं।"

"मर जायेगी कलमुंही १५ दिन हो गए, बिना खाये-पीये।"

"आज दूध पीऊंगी।"

'बिना डाक्टर से पूछे, बीमारी बढ़ गई तो?"

"नहीं बढ़ेगी।"

"क्यों?"

"मैं जानती हूं।"

"कैसे?"

"जैसे अब तक नहीं पिया।"

"इसका मतलब आज तबियत ठीक है।"

"हां!"

"जुग-जुग जियो मेरी बच्ची, ले आऊं दूध अभी।"

"ले आओ, और देखो प्रसाद भी चढ़ाती आना मन्दिर में पांच पैसे का।"

माँ आयी तो गिलास हाथ में लिए रुक गई। बोली "सच बता री इस कलयुग में भी तेरी राम में श्रद्धा है।"

"है।"

"मेरी कसम खा।"

"तुम्हारी कसम माँ।"

"तू मेरी कोख को जरूर ऊंचा करेगी कुमुद ! मैं डरती थी, बिना बाप की बेटी, नयी दुनिया में कहीं भटक गयी, कहीं उसका पांव ऊंचा-नीचा पड़ गया तो ......"

"एक बात पूछूं मां ?" गम्भीर होकर कुमुद बोली।

"पूछ ना, क्या पूछती है ?"

"मान लो अगर मेरा पाँव ऊंचा नीचा पड़ गया तो ?"

"धुत पगली, ऐसी बात नहीं कहते।" माँ चल दी।

"सुनो माँ !" रोती हुई कुमुद बोली।

"क्या है ?"

'मेरी बात का ज़वाब दो।"

"क्या जवाब दूं, तू तो पागलों जैसी बातें करती है। बड़ी भोली है, मुझे जाने दे।"

"नहीं माँ, मेरी बात का जवाब दो।"

माँ गम्भीर होकर ठहर गई। कुछ देर उसकी ओर घूरा और फिर पूछा, "तू पूछ क्यों रही है री ?"

"यूं ही।"

"मैं नहीं बतलाऊंगी, फिर।"

'तो सोच लो, कुछ खास बात है या होने वाली है।"

"कुमुद !" मां कर्कश हो गई, "बदजबान हो गई है क्या, होश में बात कर।"

कुमुद ने गरदन नीची किए ही कहा, 'कुछ भी हो, मेरी बात का जवाब दे दो, बस।"

और भी कर्कश स्वर में मां ने जवाब दिया, "तेरे रीति पालने पर जितनी खुश होकर प्रसाद चढ़ाती हूं कुमुद, अगर रीति तोड़ दी तो उतनी ही खुश होकर तब प्रसाद चढ़ाऊंगी, जब तू मेरे घर से निकल जाएगी।"

"वह तो एक दिन जाऊंगी ही माँ।"

"यूं नहीं, जैसे कलंकिनी को निकाला जाता है।"

कुमुद कांप गई। "तो फिर इसका मतलब यह हुआ कि फिर तुम्हारा मां-पन खत्म हो जाएगा।"

"वैसे ही जैसे तेरा बेटी-पन।"

"क्यों?"

"मर्यादा को तोड़ने वाली बेटी की यही सजा है। राम ने सीता तक को घर से निकाल दिया, फिर क्या मैं कहूं।"

"पर उसमें सीता का दोष क्या थां मां, रावण ही तो उठा ले गया था।"

"इससे क्या हुआ? हुई तो वह पतित ही।"

"अगर तुम्हारी लड़की के साथ भी वही हो जाय तो?"

"मैं उसे इस घर में नहीं रहने दूंगी। निकालूंगी और चोटी पकड़ कर। घसीट कर और मुंह काला करके।"

"फिर सब ठीक हो जायगा।"

"हां," क्रोध के मारे मां के नथूने फूलने लगे थे, "फिर सब ठीक हो जायगा। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। इसमें रुकावट क्या है? जिसका···है, उसके घर जाकर घड़ा फोड़।"

"लेकिन उसने घर में न घुसने दिया और फिर वह किसी के चंगुल में फंस जाय, पाप पर पाप करे···कुछ राजी से कुछ नाराजी से, तब?"

"बक मत कुमुद, वरना मैं गाल पर तमाचा जड़ दूंगी। इतनी मुंहजोर हो गई है तू। बीमारी से उठी है वरना…"

कुछ रुक कर फिर कहा, "फिर चाहे वह पाप करे या महापाप। मेरा क्या दोष मैं तो अन्धेरे से बच गयी। मेरे घर को तो स्याही नहीं लगी।"

कुमुद कमरे में जाती हुई कहती गई, "कोख तो मां की ही बदनाम होगी, उतनी ही बार, जितनी बार कि बेटी को काली होगी—"

मां उसके पीछे भागी तो दरवाजा बन्द कर कुमुद सिसकने लगी।

"हे भगवान, यह कैसी परम्परा है! यह तेरा कैसा न्याय है? आदमी कुत्ता है,। मुझको फूल की तरह गले से लगाये चूसे और चला जाय और …"

उसकी दृष्टि अपने पेट की ओर चली गई। यद्यपि उसमें कोई परिवर्तन न था, परन्तु उसे लगा जैसे दिनों दिन वह बढ़ रहा है, उसके प्रेम का पौधा, कलंक का चाँद और…

और प्यार का तारा।

उसका आकार।

"यह आदमी हैं या जानवर। न इन्हें अपने किये की याद रहती है न किसी के दुख की।"

"अब मेरा क्या होगा?"

राम ने भी सीता को घर से निकाल दिया था।

चोटी पकड़ कर घसीट कर। मुंह काला करके।

कौन अट्टहास कर रहा है उसके अन्तर में, व्यंग्य, नारी, कुमुद? बेटी, नहीं नहीं कलंकिनी, दुष्टा।

"मैं-मैं, हे महावीर। हाय राम। क्या हुआ था मुझे, कहां गई थी मेरी अक्ल।"

"मां ही कहा करती थी, क्यों नहीं जाती री, वह बुला रहा है। कितना शरीफ लड़का है।"

उसने खुद कितनी ही बार कहा था मैं तुम्हें ब्याहूंगा, धर्मपत्नी बनाकर तुम्हारी मांग में सिन्दूर भरूंगा, फिर संकोच कैसा !

"वह देवता है। मां ने कई बार सुझाया था।"

"राक्षस था, हैवान, जंगली, हब्शी था।"

"पर अब होगा क्या ?"

"कब तक बचूंगी डाक्टर से ? कहां तक छिपाऊंगी इस स्याह धब्बे को। न यह धुलेगा, न साफ होगा। फिर ! यह तो, यह तो···

"मैं मर जाऊंगी।"

बिस्तर पर उसकी दृष्टि गई तो चमक गई डायरी जय की।

"तुम भी चले गए। तुम्हारा दोष क्या ? मैं ही कौनसी प्रीति करती थी तुम्हें। यह तो छल था। धोखा था।"

वह लेट गई। रोती रही। और बाद में मुड़े हुए पन्ने के आगे डायरी पढ़ने लगी।

सत्ताइस

"अजीब समां है यह भी। शराब, साकी और सुन्दरी। तो आज़ मैने पीली। दो घूंट। जीवन भर की संयम—निधि गंवा दी। धूल में फेंक दी। बेकार कर दी।"

"उसके कटाक्ष। वह भोलापन, पीने के बाद की ताड़ना। नम्र निवेदन। एक प्रार्थना, उसके शब्दों में, अर्ज ? नाचीज की अर्ज।"

"उफ, अमृत के प्यालों में विष, विष के चषक में अमृत। वह वार-विलासिनी, वेश्या, तवायफ।"

"एक नाचीज की अर्ज ?"

'मनुष्य हूं या पशु। हर समय शराब, कवाब, नाच, गान, व्यभिचार पन्द्रह दिन से जा रहा था मैं उसके कोठे पर।''

"वह तबलची, आदाब अर्ज है ? और वह खुद, नमस्ते बाबूजी। तशरीफ लाइये। गोहर, अरी ओ गोहर। एक पान दे।''

"मैं किस्सये गम जो लिखने को बैठी
तो देखे कलम की रवानी में आंसू।''
ताक धिनाधिन···
सारे···गा···मा···पा···
जी, पान खाइयेगा ?
नहीं।
क्यों ?
खाइये भी।
गोहर...पीकदान रख।
मेरी दीवानगी की अब शिकायत और मत करना।''
कि दीवाने भी इस दुनिया से लौटाये नहीं जाते।
पांच रुपये का नोट···
तू दे यह।
नहीं।
आदाब अर्ज हुजुर···
न खाओ तरस अब मेरी जिन्दगी पर···
उठाया कदम मौत फिर रोक लेगी।
सारे···गा। । । । । मा···पा···
अ···आ···आ···अ···म···अ··-आ।
फिर रोक लेगी।
दन··· दनक··· दनक
चल दिए सरकार। कल फिर आइयेगा।
आप जरूर आयें···

मैं इंतजार करूंगी ।

१५ दिन ...

एक जाम लीजिये ।

नहीं ।

मेरी कसम ?

नहीं ।

मेरी जान कसम ।

नहीं ।

अपने सबसे अजीज की कसम ।

उफ ... यह कड़वाहट ...

तो सिरगट पियो ... । एक पान और ...

एक नाचीज अर्ज है जय बाबू ।

क्या ?

"आप आइन्दा कभी मुझ बदनसीब के कोठें पर तशरीफ न लाएं ।"

"क्यों ? मैं तो आऊंगा। !"

"मैं नहीं चाहती ।"

"तुम्हारी पैसे की हविश चाहती है ।"

"क्यों !"

"मरजी मेरी !"

"तवायफ की मर्जी पैसों पर बिकती है।"

"औरत की ... ।"

"नहीं ... ।"

"नहीं बिकती न ! तो सुनो । तुमने मुझे तवायफ नहीं समझा । वह नहीं मांगा, जो तवायफ से मांगा जाता है, इसलिए मैं तुम्हारे सामने औरत हूं ।"

"फिर ... ।"

"उसकी हैसियत से ही इल्तजा करती हूँ कि······पैसा बरबाद न कर कुछ बड़ा काम करो।"

"क्यों ?"

"शहद न मिलने पर सभी नहीं पीते। मिलने पर जो न पिये, वह आदमी आदमी है। आदमी का सिर ऊंचा करो।"

"मैं आदमी कहां ? तुम्हारे कोठे पर आने पर भी······"

"कोठा गलत नहीं सरकार। मैं गलत हूँ। क्यों हूँ बताने की जरूरत नहीं पर आप आइंदा मेरे कोठे पर न आएं। न आयें······"

"यह सट्टे का पैसा है तुम क्यों फिक्र करती हो ?"

"यही तो फिक्र है। यह सट्टा भी छोड़ दो। सब छोड़ दो।"

"तुम यह पेशा छोड़ दोगी क्या ?"

"नहीं।"

"तो मैं भी नहीं।"

"तुम्हें फिर अपने अजीज की कसम। मेरे सर की कसम।"

लो एक गजल सुनो। आखिरी गजल···

"न यह जिस्म होता न ये होती चाँदी
न होती ये अस्मतफरोशों की महफिल।
अगर तुम जिगर का मुझे दाग कहकर
न यूं ठोकरों में मेरा तोड़ते दिल॥"

सा···रे···गा···मा······

वह रंग नहीं रहा।

यह उसका खत ?

औरत की अस्मत की कद्र करना जो जानता है उसकी कीमत तवायफ की नजरों में सबसे ज्यादा होती है। दुनिया में कुछ करो। यह मेरी तमन्ना है। जो दिल लाख लाख सोने चाँदी के सिक्कों पर न बिका, उसको लूटकर शौहरत का सातवाँ आसमान बना। फिर मैं यह पेशा छोड़ दूंगी।

शम्शा……।

और यह सट्टा बाजार ?

यह रुपया……।

सुबह फिर छोड़ दूंगा। सूरज निकलने से पहले चल दूंगा। इस शहर, इस शम्शा, इस महफिल से दूर……शौहरत के सातवें पर…

जोकि……मेरी सबसे अजीज। अब तो तुम भी हो गई शम्शा।

मैं लौटूंगा।

अठाईस

यहीं पर खत्म हो गई। कुमुद ने डायरी बन्द की, सिरहाने रख ली यह आदमी है या फरिश्ता।

"मैं जाऊंगा कुमुद। एक बार जरूर आऊंगा।"

उसकी दृष्टि अपने बदन से उतरती हुई पेट पर पहुंच गई। सिसकती रही वह। सन्ध्या समय और द्वार बन्द ?

"कुमुद बेटी। दरवाजा नहीं खोलगी क्या ? दीया बत्ती तो कर ले।"

दरवाजा खोला तो मां ने कहा—'बुरा मान गई बेटी……मां से इतनी नाराज मत हुआ कर बेटी। तू क्यों इस समाज के कायदों की फिकर करती है। अपने काम से काम रख।"

कुमुद बैठी रही।

"तू उदास है अभी तक। मेरी बेटी।"

"अच्छी बेटी……चल कुछ खा पी। परसाद बांट आई मैं अब तो चल।"

कुमुद उठी तो सोच रही थी······मां है इसलिए। पर काली स्याही······उसका क्या होगा ?······मां बेटी के बीच वह नफरत और पाप की दीवार जिस दिन आ जायेगी···क्या होगा ?

उन मां बेटी के संबंधों का प्रेम कहां जायगा ? रास्ते की भिखारिन हूंगी मैं ?

उफ······समाज का दाग।

उनत्तीस

गोपाल राठौर के गाँव का नाम कनकपुर था। करीब दो-तीन हजार की आबादी वाले इस गाँव में जो वह प्रयोग कर रहा था उसके आधारभूत तत्व निम्न थे–

सारे गांव के उन आदमियों की जमीन का एकीकरण जो योजना में सम्मिलित थे एक समिति बना उसे उसकी प्रबन्ध व्यवस्था सौंप दी गई।

परिवार के सदस्यों के हिसाब से प्रत्येक प्रौढ़ सदस्य को ५०) नवयुवक को ४०) बृद्धों को ३०) माहवार पर नौकर रख लिया गया। जो काम जिसने चुना उसको दिया गया। जमीनों की कीमत लगाकर एक रुपया प्रतिशत के हिसाब से उसके मालिक को ब्याज देने की व्यवस्था की गई। शादी-विवाह और अन्य पर्वों पर सहकारी व्यय का नियम बना दिया गया। कृषि के अतिरिक्त गाँव में धोबी बढ़ई लुहार, बागवान और अन्य श्रमिक कारीगरों को भी नौकर रख, अलग दुकान दे उन पर काम करने को बैठा दिया। पशुओं की नस्ल में सुधार के लिए पशुशाला खोली गई, एक अस्पताल स्कूल तथा पाठशालाएं खोली गई।

सदस्यों के लड़के जो बाहर पढ़ने जाते उनके लिए कक्षाओं के स्तर के अनुसार व्यय निश्चित कर दिया गया। छोटे बच्चे जो गांव में पढ़ते और छः साल से अधिक की आयु के थे १०) माहवार पर रख लिए गए।

इस प्रकार प्रत्येक विभाग की अलग-अलग समिति बनाकर उन्हें कार्यभार सौंप दिया गया।

अपनी जमीन का मूल्य और अपनी संचित राशि में से दो लाख रुपया देकर गोपाल राठौर ने यह योजना प्रारम्भ की। न इसमें सरकार का सहयोग था और न किसी संस्था का। पूर्ण स्वतन्त्र इस संस्था का अध्यक्ष गोपाल राठौर और संचालिका उसकी माँ थी।

गांव के मध्य एक मन्दिर और उसके पास ही एक साँस्कृतिक कार्यों के लिए भवन गोपाल की मां ने अपने रुपये से बनवाया। परिणामस्वरूप ग्राम्य जनता में धर्म भावना और शिष्ट मनोरंजन की प्रवृत्ति बढ़ ही रही थी।

इन सब समितियों के अतिरिक्त तीन विशेष समितियाँ थीं···जिनमें से प्रत्येक को कुल आय का पाँच प्रतिशत दिया जाता था। समाज, कल्याण शिक्षा और मनोरंजन समिति।

प्रारम्भ में इनकी योजनाओं में बाधाएं आयीं। दो वर्ष तक २५ हजार रुपये का घाटा भी रहा तो गोपाल ने अपनी निजी संपत्ति में से पूरा किया।

अब जब कविता यहां आयी तो सब काम होने के बाद योजना पर १५ हजार रुपये वार्षिक का लाभ था जो जनता के हित कार्यों पर खर्च होता था।

इस गांव में पक्की सडकें, एक अस्पताल, इंटर कालिज, सात ट्यूब वैल नाटयग्रह, अनुसंधान केन्द्र और बच्चों के लिए पार्क आदि सब सुविधायें उपलब्ध थीं।

नैतिकता और सदाचार से परिपूर्ण लगन और श्रम से चल रही इस योजना, इसमें निहित स्वर्ण स्वप्नों और गोपाल राठौर की महत्वाकांक्षाओं का निरीक्षण और अवलोकन करते हुए कविता को दो मास व्यतीत हो गए।

इस बीच सब योजना कविता को समझा, गोपाल राठौर अपने पद से त्याग पत्र दे उसे समितियों का अध्ययक्ष बनवा चुका था। नियुक्ति से पूर्व उससे सौगन्ध ली गई थी कि जीवन के अन्तिम क्षण तक जीवन और जनजागरण की समस्याओं में सत्य और निष्ठा से सुलझायेगी।

संचालन और अन्य सब सदस्यों के कारण पूछने पर केवल उसने इतना ही कहा……मैं कुछ बीमारियों से ग्रस्त हूँ, पता नहीं कब चल बसूं, इसलिए चाहता हूं कि मेरी मृत्यु से पूर्व……।

माँ पास ही बैठी थी…आगे कुछ कहने से पूर्व उसके मुंह पर हाथ रख उन्होंने कहा…गोपाल, मेरे सामने आइंदा ऐसी बातें कीं तो……

और फिर सभी जानते थे कि गोपाल राठौर को कुछ बीमारी है। इलाज की उपेक्षा और कार्य की संलग्नता के कारण वह अनेकों बार इतना बीमार हुआ कि मृत्यु और जीवन में सन्देह न रह गया था!

हृदय में दर्द होता था उसके। न आज तक उसने अपनी बीमारी किसी को बताई और न किसी परिचित चिकित्सक को चिकित्सा करने दी। दूर कहीं से उसका एक मित्र चिकित्सक बहुत खराब हालत होने पर मां द्वारा तार देकर बुलाया जाता था।

कारण……कभी उसका पता एक नहीं रहा। जो होता था उसे गोपाल के अतिरिक्त न कोई जानता था न वह बताता था।

समिति के निर्णय के बाद जब वह घर आया तो कविता से कहा—"कान्ता कुछ बात विशेष करनी हैं मेरे साथ जाओ।"

फिर मां से बोला—"माँ, भोजन हम दोनों कर चुके हैं। चिन्ता न करना, सो जाना। नौकरों को भी चाहो तो छुट्टी दे देना। मुझे

अब कोई काम नहीं।"

कमरे में पहुंच, कविता से दरवाजा बन्द करने को कह उठते हुए बोला—"आज फिर मुझे लग रहा है शीघ्र ही मेरी बीमारी का दौरा शुरू होने वाला है इसलिए……"

वह रुक गया तो कविता ने कहा—"कहो न रनवीर भइया ? क्या कहना चाहते हो ?"

"करोगी जो काम बताऊंगा ?"

"अवश्य।"

"मेरी सौगन्ध लो।"

"ली।"

"तो बैठ जाओ।"

बैठ गई तो कविता से कहना शुरू किया उसने—"मेरे हृदय में आज फिर पीड़ा हो रही है। अधिक से अधिक परसों तक खाट से उठने उठने लायक नहीं रहूंगा, इसलिए आज ही की रात्रि यानी अभी अपनी जिंदगी का अन्तिम अभियान पूर्ण करने जाऊंगा।"

"कौन सा, कहाँ ?"

सरगांवपुर के कपड़े मिल में तीन दिन से हड़ताल है। मजदूरों का नेता भूख हड़ताल पर है कल शाम से। उसके मालिक से मैं परिचित हूं। मेरा कालेज फैलो है। अपने दल के सदस्यों को उस मिल के प्रारम्भ होने से आज तक के मजदूरों की फहरिश्त मय उसके कार्यालय तक बनाने की मैंने आज्ञा दी है। इस मिल से एक लाख रुपया वार्षिक लाभ सेठ गोपाल शरण को है। मजदूर अधिकाँश भूखे कम तनख्वाह वाले हैं। क्योंकि इलाका गरीब है. इसलिए गलत हिसाब लगाकर करीब १२ हजार रुपया वार्षिक लाभ दिखाकर वह मजदूरों और सरकार दोनों को छल रहा है।

"मगर इससे तुम्हें……"

,'मुझे काम है कविता बहन ! मैं उस व्यक्ति से, उसकी तिजौरी से पूर्ण परिचित हूं। तीस चालीस लाख रुपये के जेवर और नोट उसमें सदा रहते हैं। बढ़िया कोठी और······''

"तो सरकार को खबर दो ?"

'दी जा चुकी है। पैसे के नीचे दबकर जांच समितियां और पुसलि विभाग उसकी सचाई की रिपोर्ट पेश कर देते हैं।''

"फिर···?'

"आज मैं या तो उस तीस लाख को लाऊंगा या मरूंगा। जानता हूं कि आज नहीं तो दो चार महीने बाद इस दौर में मरूंगा ही, फिर क्यों न इस इच्छा को पूरी कर लूं।"

"तुम इतने निराश क्यों हो गए ?"

"सच बता दूं।"

"सच।"

"तो सुन कविता, जिस दिन पहली बार तुझे देखा था, तब से अब तक यह आत्मा ने सदा सर्वदा कहा कि तू मेरे हर रहस्य से परिचित हो सकती है विश्वस्त है।"

कविता चुप रही।

इसीलिए हृदय को कड़ा करके सुन कि मैं टी० बी० का मरीज हूं। फेफड़े बिलकुल खराब हो चुके हैं कभी उनकी चिकित्सा प्रारम्भ में अपने आदर्शों और कार्यों की व्यस्तता के कारण न करा सका और अब······

"इसके अतिरिक्त मेरे मन से यह धारणा नहीं निकली कि जब लाखों व्यक्ति उस रोग से बेइलाज या दवाइयों के अभाव में मरते हैं, तो मैं ही क्यों न मरूं ?"

कविता ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया तो उसने हंसकर कहा— "अब इस विषय में नहीं कहूंगा, हाँ तो सुन और बात तेरी तरह मैं भी अपनी माँ का पुत्र नहीं। मां के पास एक ताबीज है। जिसे खोलकर

मैंने देखा कि उसमें के कागज पर लिखा है कि किन्हीं कारणों वश मेरी मां ने यह ताबीज मेरे गले में डाल सड़क पर अपनी सामाजिक रक्षा की है।"

"माँ ने यह बात आज तक मुझे नहीं बताई पर मैं पता कर चुका हूं कि मां यहाँ से साल भर के लिए पिता जी के साथ बाहर रहकर उसी वर्ष आयी जिस वर्ष की तिथि मुझे ताबीज के कागज में लिखी मिली। इसके अलावा भी माँ की सन्तान के प्रति लालसा और उस समय के बाद या पहले कोई सन्तान न होने की घटना से मुझे विश्वास हो गया।"

"एक बात और······तेरे गोद लिए जाने की बात मैंने ही माँ से कही थी···रहस्य की सही जानकारी के लिये।

"सो जब उस रात तू मेरे पास से चली गई तो मैंने स्वयं मां के कमरे में गुप्त मार्ग से जा उन्हें भगवान की मूर्ति के सम्मुख कहते हुए सुना···इसी तरह से पुत्र दिया था आज पुत्री दी। मैं निपूती रही कैसे प्रभु? मैं तो सन्तान वती हूं।

"यह धारणा भी अपनी चिकित्सा पर व्यय न करने की बात के मूल में मेरे मन में रही, क्योंकि इस धन के व्यय का अधिकार मैं नहीं रखता हूं। डाकेजनी से आय पर······"

कविता की आंखों में आंसू आ गये थे। अपने हाथ से उन्हें पोंछ रनवीर ने कहा—"तू क्यों रोती है पगली। मैं इस जन्म में तुझसी बहन पाकर धन्य हो गया।"

"आगे की बात······अपनी योजना सुनाओ।" कविता ने रुँधे कंठ से कहा।

रनवीर ने कुछ देर रुक कर कहा—"यदि मैं मारा गया तो मां को कभी दुखी न करना योजना को चलाना और जो धन मैं भिजवा दूं

वह सूची के अनुसार मजदूरों के घर किसी भी प्रकार भिजवा देना।"

"भइया···अब कविता रो उठी।

"कविता! तू तो वीर हृदय है। फिर यह आसू क्या यूँ ही टपका रही है। तुझे तो गर्व होना चाहिए कि तेरा भाई डाकू होते हुए भी अपने कर्तव्य···मानवीयता के आदर्शों से नहीं गिर रहा है। बोल करेगी न?"

"यह होगा पर कैसे? सूची और धन मुझ तक आयेगा कैसे? आ भी गया तो···"

"सब आ जायगा। मैंने प्रबन्ध कर दिया है। मेरी मृत्यु की पूर्ण आशंका है। इसलिए रही बात विवरण की, सो तू सूची के अनुसार हर श्रमिक के भाग का योग कर एक स्थान पर रख देना। वहीं धन और सूची भी। फिर स्वयं वितरित हो जायगा। वह स्थान यहाँ से जाते समय तुझे दिखा दूंगा। करेगी न यह काम?"

"हाँ भइया!" पर मेरे आशीष में यदि कुछ यथार्थ है। सत्यता है नारी के सच्चे हृदय के बारे में यदि बल है तो तुम स्वयं प्रातः मुझसे मिलोगे। मेरी यह भगवान से प्रार्थना है।"

बस कविता सन्तुष्ट हुई। अच्छा एक बात और बता कि तेरे पति कौन और कहाँ हैं?"

कविता की गरदन झुक गई। रनवीर बोला—"मैं समझता हूं कविता तू घर से निकाली गई है। पर उस आदमी का पता मुझे मरने से पहले बता दे।"

"सुबह बताऊंगी।"

"न आया तो?"

"असंभव है। मेरे रनवीर भइया को सामने पढ़कर मार सके वह अभी गोली बनी नहीं। लेकिन एक बात का संशय मेरा तुम भी दूर करो भैय्या।"

"किस बात का ?"

"यह डाकेजनी का पेशा उचित लक्ष्य और ध्येय होते हुए भी क्या न्याययुक्त है ?"

"हाँ !"

"कैसे ?"

'मैंने इस तरह इसका जाल बिछाया है कि दण्ड का भागी बना तो अकेले और मेरी यह योजना तुम देख नहीं रहीं क्या ? माँ को मैंने गलत बताया था कि पिता बैंक में रुपया छोड़कर गए हैं। वे तो एक लाख का कर्जा छोड़ गए थे।"

"क्या मतलब ?"

"वे एक नम्बर शराबी जुआरी और वेश्यागामी थे।"

"लेकिन फिर भी भैइया। अमीरों का क्या दोष ? यदि उनके पास पैसा है ?"

"समझ रहा हूं कविता···उन अमीरों के प्रति आज मुझे कोई शिकायत नहीं जिन्होंने इसी तरह ईमानदारी से धन एकत्रित किया जैसे यदि चलती रही तो एक दिन हमारी योजना के पास भी हो जायगा। लेकिन आदमी का खून चूसकर उसका रक्त पीकर जो धन बटोरते हैं वे उनके प्रति···

"पर छोड़ो। मैं डाकू पहले और प्रतिक्रियावादी बाद में।"

"जानना यह है कि भइया यह ठीक है या गलत ?"

'मेरे जीवन में ठीक है कविता और अगर कोई मेरी ही भाँति निर्लिप्त रहकर उस धन का सदुपयोग कर सके तो कभी अनुचित न होगा।"

अच्छा अब चलूँ। चल तुझे वह स्थान और गुप्त मार्ग दिखा दूं। और हाँ अगर प्रातः तक न आऊं तब भी किसी प्रकार यह शक न होने देना···१५ दिन तक······

कविता की आँखे आज बार बार बह रही थीं। नलिन जय और यह रनवीर भगवान तकदीर में क्या यह बिछोह ही बिछोह है।

तीस

सूर्योदय होते ही कविता गोपाल के कमरे में गई। बिस्तर बिना सिकुड़नों के पड़ा अपनी रात भर की विरह गाथा सुना रहा था। गोपाल अभी न आया था। कविता का अन्तःकरण कांप उठा, सिसक उठा मौनिमा के अश्रु बहाता बिलखने लगा, तेरा क्या……?"

"नहीं, नहीं वह आयेंगे, अवश्य आयेंगे।"

"परन्तु……"

जय की याद उसे अचानक आज हो आयी। एक वह था……

वह……

"भाभी ?"

"बहिन ?"

"व्यभिचारिणी।"

'कम्युनिस्ट…डाकू‥ निर्माण पथिक।"

सरकार की दृष्टि में दोनों ही लुटेरे· बागी‥। गद्दार। हाँ गद्दार ही तो… जो सरकार की सहायता के लिए बिना किसी स्वयं सम्बल के आधार पर‥ जन-जन का पोषण परिपालन और सुदृढ़ निर्माण करने में लगा है वह और क्या है‥ लुटेरा‥ गद्दार‥ देश‥

"जय‥ ?"

उस पार्टी का सदस्य जिसने चीन का समर्थन किया भारत के आक्र-

मक चीन का जो मार्क्स की सैद्धाँतिकता से लाभ उठाने वाले ··नर ··सिंहों ··नर ··पशुओं ··बर्बर दुरूह हैवानों के टुकड़ों का आसरा जोड़ती है।

रनवीर····

एक डाकू जो सरकारी नीति को तोड़ हिंसा को अहिंसा का प्रबल समर्थक मान अपनी मृत्यु को निकट बुला रहा है।

तपैदिक की बीमारी में गला जा रहा है।

मैं पुरुषों का विश्वास पाती, ठुकरायी जाती। एक नारी··· कविता।

जय···।

जिसके कन्धों पर जनसेवा का भार है। कम्युनिस्टों के सिद्धांतों का प्रतिपादक। परन्तु उसने तो पार्टी से इस्तीफा दे दिया है।

फिर···।

साम्यवादी··। समान स्तर, समान सुविधाओं और समान जीवन मरण का आंकड़ों का अन्वेषक, मेरा देवर, व्यभिचारिणी जो उसकी दृष्टि में है। कविता··हां कविता का देवर जय?

रनवीर···।

डाकू···साम्यवादी। अर्थतंत्र की पुरानी धमनियों के शरीर को बदलने का उत्सुक, हिंसा, अहिंसा, न्याय, श्रम और साहस के साथ। मृत्यु के निकट भी उत्साही। मेरा भाई, मुंह बोला, सगे से ज्यादा।

परित्यक्ता का भाई····?

और··और···और न जाने वह क्यों नलिन के निकट अपनी कल्पना में पहुंच गई। शराब, जुआ, व्यभिचार का क्रेता···। पत्नी के अंगों का दलाल, पशु, भेड़िया। मेरा पति, सर्वस्व जीवन-मरण संगी। क्या हुआ होगा उसका, कहीं···?

यह मेरा संभवत: अन्तिम अभियान हो। मृत्यु भी मिल सकता

है आज की रात। कविता के अन्तर में सब चिन्ताओं के पीछे यह विचार बढ़ा चला आया। रनवीर सामने आ खड़ा हुआ। मैं डाकू हूँ। रनवीर • • •।

"भइया!' कविता बिस्तर पर गिर, सिसक उठी। चले गए क्या तुम ? नहीं आओगे • • • ?"

"नहीं ही क्या • • • ?'

"जाऊंगा नहीं, आ गया कविता। मेरे आशीष को कैसे झूठा साबित होना था।" तभी अपने कमरे के पीछे से निकल लंगड़ाता हुआ गोपाल आ खड़ा हुआ।

"रनवीर भैइया!" कविता ने आंखें पोंछते हुए कहा—"तुम आ गए, मैं जीत गई। मेरा आशीष जीत गया।" तभी उसकी दृष्टि उसके पांव की लंगड़ाहट और चेहरे के दुर्बल शुष्क भाव पर पड़ गई—"पर यह ऐसी • • • ?"

"कुछ नहीं कबिता! आज तुम जीत गई, मैं हार गया। गोली और बन्दूक हाथ में लिए मैं • • • रनवीर • • • एक मामूली आदमी की गोली से घायल हो गया। मेरा अचूक निशाना • • • उफ ?"

वह दर्द से कराह उठा • • • वक्ष पर अपने हाथ रख नीचे को बैठना चाहा। उसने और पाँव में दर्द होने के कारण फर्श पर गिर पड़ा—"मुझे सहारा दो कविता मैं।" उठने का प्रयत्न करता वह वक्ष पर हाथ रख फिर वहीं लेट गया।

कविता के हृदय में प्रसन्नता की जो क्षणिक आभा विकसित हुई थी, उसका कमल मुर्झा गया। यह क्या • • • वह तो, बुरी तरह बेकार सा है।

सहारा देकर उठाते हुए उसे पलंग पर लिटा. कविता ने पजामा ऊपर उठाया। घुटने से तो • •

वह देखती रह गई। भौचक्की—'भइया।"

"धीरज धर कविता। यह तो अभी मामूली तकलीफ देखी है।"

इतना कह उसने अपने कुर्ते की बाँह ऊपर उठायी। पाजामा और ऊपर को उठाया तो कविता दंग रह गई। न आँसू थे, न क्रन्दन। आदमी है या पत्थर। गोलियाँ जगह ...

वह हंसते हुए बोला—'आज मेरा सामना आदमी से नहीं देवता, राक्षस या यक्ष कुछ भी कहो उसे, कमाल का साहस था उसमें, जिससे हुआ।

"पर था कौन ?'

"वह भी भूख हड़ताली था ? कई दिन रात से कुछ न खाने वाला मजदूरों का नेता।"

कविता के आश्चर्य की सीमा न रही। बोली—"मजदूरों का नेता. जानता था कि तुम रनवीर हो ?"

"जानता था वह कविता। कहने लगा—हमारे और मिल मालिक के झगड़े आपस में सुलझ जायेंगे, उसकी दौलत तुम लूट नहीं सकते ?'

मैंने कहा—'लेकिन मैं तो ...।'

वह बोला—"सुन चुका हूँ। लेकिन मैं इस हिंसा का समर्थन नहीं कर सकता।"

"तब फिर विरोध करो।' मैंने कहा और गोली का निशाना साध सेठ के सीने पर चला दी। परन्तु ...

धांय .. धांय .. धांय ! तीन गोलियां उसकी मुझे लगीं। मैं गिरने को था, किन्तु मैं रनवीर। लोहे का कविता, एक हवाई फायर अपनी दुनाली से किया और वहीं चलते-चलते एक गोली तिजोरी के ताले पर मार दी। वह टूट गया था।

"उस आदमी को क्यों नहीं मार दी एक गोली ?"

"नहीं कविता! उसे रनवीर किस हौंसले से मारता। वह न मानव लोहू का शोषक था, न राजनीति का जुआरी, फिर उस निःस्वार्थ इंसान पर गोली कैसे चलती ?'

"लेकिन अपनी जान उसकी कुछ कीमत नहीं क्या ?"

"है कविता ! मगर इतनी नहीं कि सही मायनों में एक इन्सान जो है, उसका लहू पीकर अपनी रक्षा करूँ।"

"फिर क्या किया ? अभियान असफल ?"

"नहीं री ! वह तो मेरी योजना का एक अंग था जो सफल रहा। मेरे नीचे कूदते और हवाई फायर होते ही पुलिस जीप वहाँ पहुँची और ···

फिर ··· फिर तो सब साथी पकड़े गए होंगे ?

"और जीप में कौन थे ?"

'तुम्हारे आदमी।"

"हाँ !"

"माल सब आ गया। ठिकाने पर पहुंच गया।"

सूची आ गई ? पर वह आदमी···। उधर अचानक गोपाल का दर्द बहुत बढ़ गया। वह बड़बड़ा उठा···मौत···अभी नहीं। उस आदमी के एक बार सामने बैठकर बात करने की तमन्ना है।

कविता बाहर को लपकी तो उसने कहा—"नहीं। माँ को न बुला। बैठ जा। एक कागज ला और दो पते लिखकर तार दे आ कम सून। सीरियसली इज।

"मेरा पता देना।"

"बोलो ··।"

"शचिन १३ एम० ब्लाक विनय नगर और···?"

"दूसरा···?"

"रहने दे। उन्हें ही दे। शीघ्र तांगे से जा और तार दे। और माँ से न कहना। मेरे बारे में कुछ। कहना कि रात कहीं बाहर चला गया। दो सप्ताह के लिए।"

"और ··?"

मुझसे वहां मिलो। गुप्त भवन में। मुझे तुमसे जयनाथ के बारे में कुछ बातें करनी हैं ?

"जयनाथ !" कविता चौंक गई—"यह कौन है ?"

"वही भूख हड़ताली।"

कविता का हृदय बैठ गया—"वह जयनाथ था हे भगवान ... आपस में टकरा गए।"

"उसके बारे में क्या बात ..?" कविता ने पूछा।

"सिद्धाँतों की और उसकी चिकित्सा की ?"

'तो क्या उसे भी चोट लगी है ?"

"हाँ !"

"कैसे ?"

मुझे जब वह गोली मार रहा था मेरे एक आदमी ने उसको गोली मारी थी।

"अच्छा !" कविता के मुंह से निकल गया। पीड़ा को दबा वह कमरे से चुपचाप निकली और चली गई।

इकत्तास

"नहीं माँ, नहीं डाक्टर को न बुलाना ?"

"क्यों ?" आज मैं नहीं मानूंगी। माँ ने कहा और बाहर चली गई। कुमुद की बुद्धि कराह उठी .. डाक्टर आयेगा देखेगा मुझे, मेरी हालत को मेरे .. मां से कहेगा कि ... मैं माँ बन ...

नहीं यह नहीं होगा।

मां ने कहा था चोटी पकड़ कर धक्के देकर मुंह काला करके निकाल दूंगी।

"तब ?"

मैं मां को यह पता न चलने दूंगी। कलंकिनी नहीं कहलाऊंगी उसके मुंह से। तब फिर क्या करूं ? जिसका पाप उसी के घर। पर उसका पता क्या ? होगा भी तो स्वीकार कब ? हाय दइया। यह क्या ?

"वह डाक्टर तो आने वाला होगा ?"

"कह रही होगी ‥ जल्दी चलो ‥ मेरी बिटिया ‥

वह आ रहा होगा। चल दिया होगा। मेरी स्याही के धब्बों के रोशनी में लाने वाला, उनका पता देने वाला ‥ डाक्टर।

"जय ?"

वह कहां होगा ? क्या वह एक बार और आ नहीं सकता था। मान सकता था वह ? मैं उसके पाँव चूम लूं। अगर मिल जाओ तो।

"ज ‥ य ? दर्द हो रहा है पेट में ?"

"हाय राम यह क्या हुआ ? कौन रखवाला होगा मेरा ? बिरादरी की पंचायत। गली वालों की कानाफूंसी।"

यह कुमुद जा रही है।

कलमुंही। कलंकिनी। रण्डी।

मरी भी तो नहीं।

तो मर ही जाऊं मैं। हाँ मरूंगी।

"बेटी ले डाक्टर आ गया।"

कुमुद की कल्पना ने माँ की आवाज सुनी और दर्द को छिपाये अन्तर्व्यथा में पागल सी घर से निकल गली के नुक्कड़ पर आ गई। रुपये चार हजार उसने झोली में डाल लिये थे।

ओ रिक्शा वाले !

जी बीबी जी।

स्टेशन चलेगा ?

जी हाँ !

जल्दी।

बहुत अच्छा !

तो चल !

रिक्शा चल दी और कुमुद सोचने लगी। मैं चल दी घर छोड़कर देहरी लांघकर, लाज हया, शरम सब छोड़ मैं चल दी।

आत्मा कह रही थी ''और इलाज ही क्या था '' न तू समाज में बैठने योग्य रही और न किसी मतलब की। तू पाप कर चुकी है। अब सजा भुगत।

"पैर ऊंचे नीचे में पड़ गया तो ?" उसे माँ के शब्द याद आए।

बिना बाप की बेटी का मतलब आज कुमुद की समझ में आ गया। उसके पिता होते तो यूं किसी पुरुष को अपने पास न आने देते। पर मां ! उस बेचारी का सच्चा दूध सा मन। वह मेरे ऊपर रोक न लगा सकी। और अब...

वह बहुत दुखी होगी। रोयेगी, चीखेगी। शायद मर...

मुझे क्या ? घर से निकलने योग्य बन चुकी। खुद निकल आई अच्छा हुआ माँ। निकालती तब बुरा होता। कोई मुझे अब देखेगा तो नहीं।

पर माँ, उसकी गोद में खेली, दूध पिया, प्यार किया। अब उसकी इज्जत धूल में मिला दी। इसीलिए जन्म दिया था मुझे ?

"स्टेशन आ गया बीबी जी।" रिक्शा वाला बोला।

"अच्छा कितने पैसे ?"

"आठ आने।"

कुमुद गाड़ी में बैठी। गाड़ी दिल्ली स्टेशन से बाहर निकल गई। उसका मन कह रहा था, मैं चल दी। देश की राजधानी, मां की देहरी घर न लाज पिता की प्रतिष्ठा और औरत की दया सब पर लात मार कर। कहां ? जहा तकदीर ले जावे। अब तो यह गाड़ी ही तकदीर है।

आठवीं तक की किताबों के बजाय जिंदगी का यह सबक पढ़ती तो ?

अब क्या सोचा ?

जो हो गया वह तो वापस लौटना नहीं।

डूबूंगी नहीं मरूंगी नहीं। जियूंगी पाप के पौधे को दूध पिलाने के लिए, बड़ा करने के लिए। यह बताने के लिए कि दुनिया में बिना बाप की औलाद भी ··

गाड़ी चलती रही। कुमुद सोचती रही।

बत्तीस

स्टेशन पर तार देकर कविता एक असमंजस में पड़ी। कुछ निश्चय नहीं कर पा रही थी कि वह कहाँ जाये। उसके मस्तिष्क में एक ओर जय था, उसके प्यार, कामना और स्नेह का पोषित दिया टिमटिमा रहा था। दूसरी ओर रनवीर ·· उसकी मृत्यु। भावना का मुमुक्षु मन्दिर गिरने को था, टूटने बिखरने, स्वाहा होने जा रहा था।

"वह किस ओर जाये ?" कविता सोच रही थी।

"जय के पास, उसके घावों पर मरहम पट्टी करे, कहे उससे। तुम मुझसे घृणा कर सकते थे। मेरे स्नेह को दुतकार सकते थे। लेकिन ये नहीं, क्योंकि मैं कविता हूं। तुम्हारी भाभी। सीता लक्ष्मण की परंपरा पोषक। उस ी मान स्मृति व्यभिचारिणी।"

"पर रनवीर ! वह मेरे बिना, मेरी सहायता के बिना, मेरे स्नेह और सेवा के अभाव में ···"

"उसका शरीर ?

"गुप्त अस्तित्व।

"गुप्त भावना !

"सब समाप्त ।

"मैं · · मैं · ·

"कविता बुदबुदा रही थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। जय की मन्जिल पर ही जा रही थी। क्या करूँ तब मैं ?"

तभी उसकी दृष्टि सामने के जनाने डिब्बे में बैठा कुमुद पड़ गई। मुरझाया चेहरा, बिखरे बाल, विवर्ण आकृति। यह कुमुद ही है।

वह तुरन्त पहचान गई।

कविता ने जब डिब्बे में जाकर हाथ पकड़कर हिलाया उसका तब कुमुद स्वप्न से वास्तविकता में आई। कविता को देखकर अवाक् हो गई। प्रसन्नता विस्मय और · ·

'आप ?"

"हाँ !"

"यहाँ कैसे ?"

"नीचे उतरो !"

"क्यों ?"

"एक काम है।"

"क्या ?"

"पहले उतरो। गाड़ी छूटने वाली है।"

"मैं नहीं उतरूँगी।"

"क्यों ? '

"मरजी मेरी ! परन्तु आप काम तो बतायें।"

"जय के बारे में है।"

"जय के !" कुमुद की आशा पल्लवित हो उठी—"क्या है कहो न, क्या वह बीमार हैं ?"

कविता ने अखबार उसके हाथ में दे दिया। ऊपर ही उसका चित्र छपा था। फर्स्ट लीड में समाचार था—

"भूख हड़ताली ने बन्दूक सम्भाला।"

"भूतपूर्व कम्युनिस्ट का साहस पूर्ण कृत्य !"

"साम्यवाद का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत।"

स्टेशन पर गाड़ी का मेल होना था। इसलिए वह अधिक ठहर रही थी। कुमुद ने समाचार पढ़ना आरम्भ किया।

"रिसालपुर ! यहाँ के मिल मजदूर ने जो पिछले दो मास से ही इलाके में आए हैं आज डाकू रनवीर द्वारा किये गये आक्रामक प्रहार का डटकर मुकाबला किया। आप मजदूरों की माँग पूरी न होने पर भूख हड़ताल आरम्भ कर चुके थे। जब डाकुओं की गोली की आवाज सुनी तो कोठी के द्वार पर पहुच कर एक डकैत की बन्दूक वीरता पूर्वक छीनकर रनवीर को वापस लौटने की चुनौती दी। रनवीर ने कहा-"यह माल उस आदमी का है जिसने तुम्हारे मजदूरों का खून चूसकर इकट्ठा किया है। मैं इसे गरीबों में बांटूँगा। इसलिए हट जाओ।"

आपने उत्तर दिया—"मजदूर और मिल मालिक का झगड़ा हम स्वय शाँतिपूर्ण तरीकों से हल करेंगे। एक लुटेरो को बीच में पड़ने का क्या हक ?"

बाद में आपने रनवीर को तीन गोलियाँ भी मारीं।

शेष पृष्ठ आठ कालम पाँच पर

कुमुद जब पृष्ठ पलटने लगी तो कविता बोली—"कुमुद बह्नि, तुम शीघ्र उसके पास पहुंचो और सेवा करो। उन्हें बचा लो। वह घायल हुए हैं।"

कुमुद ने पूछा—"तुम क्यों नहीं चल रही हो ?"

"मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"कुछ वजह हैं।"

"तुम्हें तो वे बहुत प्यार करते थे फिर ?"

"तुम इन बातों में न पड़ो। उनसे कहना कि कविता से नफरत है इसलिए श्रौर, किसी श्रौर को उसकी जरूरत है इसलिए वह न श्रा सकी।"

फिर शीघ्रता में घबराए हुए पूछा—"तुम जा रही हो ?"

कुमुद ने उसके रुँश्रासे कण्ठ के विवश गुप्त श्रौर श्रटूट श्राग्रह को लक्ष्य किया तो केवल इतना कह सकी–"हाँ जा रही हूं। पर तुम भी चलो।"

"नहीं !"

"जाकर खबर दूँ।"

"हां !"

"किस पते पर ?"

कविता चुप हो गई।

गाड़ी ने सीटी दे दी थी। कुमुद ने पूछा—"बताया नहीं किस पते पर ?"

कविता बोली—"उन्हें तो न बताश्रोगी।"

"नहीं।"

"सौगन्ध उनकी।"

"हाँ !"

"तो लो।" कविता से एक कागज पर लिखकर उसे पता दे दिया।

"मगर उन्हें पता न चले। खबरदार ! रो मत।"

"श्रच्छा।"

गाड़ी चल दी। कविता श्राँखों के पानी को बरबस रोके कुमुद के हिलते हाथ को देखती रही।

तेतीस

"मैं अबकी बार बचूंगा नहीं सचिन। इसलिए सिर्फ इस काबिल कर दे कि कुछ दिन जी सकूं। चलने फिरने की हालत में हो इस हालत को पहुंचाने वाले उस जयनाथ से दो बातें कर सकूँ। बस!"

"वह तो तुम जल्दी ही हो जाओगे। मगर अब मैं कहता हूं गोपाल भूल जाओ इस सबको। कुछ दिन विश्राम करो और चलकर किसी सेनोटोरियम में रहो तो तीन-चार वर्ष के लिए मैं गारन्टी लेता हूं।"

"पूछ सकता हूं क्या? इस जीवन में कुछ नहीं कर सकूंगा निष्क्रिय होकर एक मुलायम बिस्तर पर पड़ा रहूंगा। ज्यादा से ज्यादा घूमने जा सकूंगा बस! मैं इस जीवन की वृद्धि नहीं चाहता सचिन।"

"फिर अब जयनाथ से ही मिलने की कामना क्यों है।"

"तुम्हें याद नहीं रहा शायद। जिस दिन पहली बार मैंने अपनी पार्टी का गठन किया था, उससे पूर्व एक शपथ ली थी।"

"उसका क्या मतलब?"

"मतलब पूरा है सचिन। मैंने अपने दाएं हाथ का लहू भारत माँ की मूर्ति के मस्तक पर लगाकर प्रतिज्ञा की थी। माँ, मेरा दस्युबृत्ति उद्देश्य है तेरी जीवन ज्योति की सेवा करना। तेरी सन्तान की सुख-सुविधा के लिए अन्तिम क्षण तक संघर्ष और प्रयत्न करना।"

"हां, परन्तु तुम अब और क्या कर सकते हो उस हत्यारे से मिलकर।"

"हत्यारा न कहो सचिन, मैंने उसकी आँखों में बड़ी गहराई से झांका था।"

'इन समाजी नेताओं की पुतलियों पर जो असत्य और पापाचार की छाया होती है उसमें न थी। वह पूर्णतः निर्विकार, अडिग, अविचल योगी की सी दृष्टि थी।"

"मगर इससे तुम्हें लाभ ?"

"मुझे इस विषय में उससे विवाद करना है। उसे नए स्वरूप रंग और प्रेरणा से ओतप्रोत कर दृढ़ता से मर जाऊंगा।"

"और अगर वह गलत हुआ तो।"

"उसे अपने पथ पर लाऊंगा।"

"असंभव।"

"असम्भव ! रनवीर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं सचिन। मेरी आँखों से आँखें मिलाने के बाद हर दुस्साहसी हठी व्यक्ति अपनी हस्ती भूल जाता है। तुम अब अपना काम करो।"

अब कविता चुप न रह सकी बोली—"वह ही अगर हमारे मार्ग पर आ रोड़ा बन गया तो हम क्यों उसके पास जायें। जिसने तुम्हें प्राणघातक घाव और पीड़ा दी, उसके द्वारे क्यों माथा रगड़ें।"

"भूल रही हो बहिन ! रनवीर अन्याय, अत्याचार, शोषण और छलना के सन्मुख नहीं झुकता। देशभक्त, के सम्मुख देशभक्त का झुकना असंभव नहीं। मैं पता कर चुका हूं चीन और भारतीय सम्बन्धों पर तनिक सी अनबन होने के कारण वह व्यक्ति कम्युनिस्ट पार्टी और स्वर्णिम भविष्य पर लात मारकर इस कस्बे में आया है। ऐसी दिव्य आत्मा के सम्मुख अपनी बात नीची रखने से कोई अपमान नहीं। क्यों सचिन ?"

"यह तो ठीक ही है।"

"तो फिर कल चलूंगा मैं। मेरे पाँवों में चलने योग्य शक्ति और वक्ष में सुनने योग्य धैर्य केवल दो दिन के लिए भर दो। बस।"

"अच्छी बात है। करवट बदलो।"

सचिन ने उसके एक इंजेक्शन लगाया तो कविता से उसने कहा—"तुम चलोगी बहिन।"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मेरी इच्छा नहीं है।"

"झूठ कह रही हो कविता। सचिन तुम तनिक बाहर तो जाना।"

सचिन चला गया तो कविता ने कहा–"झूठ क्या है इसमें भइया।"

"सभी कुछ!"

"मिसाल के तौर पर!"

"अपने देवर की इतनी खतरनाक हालत जानकर भी तुम नहीं जा रहीं। यह भी कोई कहने की बात है।"

कविता स्तम्भित रह गई। यह पुरुष है या सर्वव्यापी परमात्मा। उसने पूछा—"तुम्हें कैसे पता चला?"

"यह फिर बताऊंगा।"

"अभी!"

"नहीं।"

"तुम्हें मेरी सौगन्ध है।"

"पगली! सम्भल कर तो रहा कर। मुझे भी पकड़वाएगी क्या? कल एक मेरे गुप्तचर ने गाड़ी पर किसी कुमुद नाम की लड़की से तेरी बात सुनकर मुझे तेरे ऊपर शक करने की प्रेरणा दी।"

कविता हँस पड़ी—"तो मेरे ऊपर ही जासूसी की तुमने।"

"सो नहीं री। पर जब तार देने के बाद तूने जय का फोटो उस लड़की को दिखाया तो वह उत्सुक हुआ और तेरी बात निकट होकर सुनी।"

कविता की आँखें न जाने क्यों अचानक भर आयीं। रंनवीर ने उसे देखते ही कहा—"रो मत पगली। जय का कुछ बिगड़ेगा नहीं। मैंने

यह स्वयं सूचना पाते ही उनकी चिकित्सा का उचित प्रबन्ध करवा दिया हैं और इसीलिए आज उसके मिलने की भी इतनी…?"

रनवीर के वक्ष में फिर पीड़ा हुई तो उसने सचिन को पुकार लिया।

सचिन ने कुछ दवाई उसे पिलाई, इंजेक्शन और लगाया और कविता से उसे सेंकने को कहा।

कविता उसके सीने पर रुई का फावा रख सेंकते हुए सोच रही थी "सबके जीवन मरण की चिंता करने वाला यह रनवीर अपनी मृत्यु के विषय में क्यों बिलकुल भी चिंतित नहीं है।"

चौंतीस

रनवीर कविता और सचिव तीनों फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे यात्रा कर रहे थे। रनवीर ने कहा—"मैं कितनी ही बार कह चुका हूं सचिन, इस फिजूलखर्ची में मुझे कुछ विश्वास नहीं, आस्था भी नहीं।"

"कौन सी ?"

"यही फर्स्ट क्लास की।"

सचिन चुप रहा।

रनवीर कहने लगा—"जिस प्रकार जो धन मैं व्यय करता हूं वह मेरा नहीं किसी की बपौती है। अमानत है। उसी प्रकार तुम्हारे पैसे के विषय में भी सोचता हूं।"

"पर यह पैसा मैंने खर्च किया है। मेरी अपनी मेहनत का है, उस मेहनत का जो पिछले दो महीने से लगातार पांच घण्टे योजना को दे कर मैंने कमाए हैं। फिर तुम्हें आपत्ति।" कविता बोली।

आपत्ति नहीं कविता—"यदि पैसे तुमने दिए तो एक सलाह है।"

"यही कि भाई को बहन का पैसा खर्च नहीं करना चाहिए।"

"फिर आयेगा किस काम यह?"

"सो बात भी नहीं कविता! इस धारणा पर भी मेरी श्रद्धा पूर्णतः नहीं। बहिन के पास यदि उसका निजी श्रम और साधन का धन है और भाई मेरी तरह आपत्तिग्रस्त, बहिन उसकी सहायता करना चाहती है और भाई केवल समष्टि और परम्परा की मान्यता के आधार पर उसे अस्वीकारता है तो मेरे विचार में यह स्नेह भंग होगा। परन्तु इतना व्यय करने की प्रवत्ति उस हालत में शोभाजनक नहीं कही जा सकती, जबकि तीसरी श्रेणी का किराया भी ५० प्रतिशत को मयस्सर नहीं।"

कविता गम्भीर हो गई तो सचिन बोला—"जब आप टिकट खरीद रही थीं, मैं तभी विरोध करना चाहता था। परन्तु प्रश्न आ खड़ा हुआ······स्नेह भंग का।"

कविता चुप रही।

रनवीर बोला—"वचन दो कि भविष्य में ऐसा कभी न करोगी?"

"जब तक कोई निश्चित तर्क न किया जाय।"

"अच्छी बात है तो सुन, जब तेरे भइया की उम्र १८ वर्ष की थी दिल्ली में पढ़ता था। न कोई घर की चिंता थी, न उधर ही। अंग्रेजी राज था।"

मेरे साथ ही एक अंग्रेज साहब भी थे। किसी के चीफ एडवाइजर। एक स्टेशन पर वाका यह हुआ कि एक बूढ़ा बूढ़ी भीड़ बहुत होने की वजह से हमारे डिब्बे में घुस आये। उनका घुसना था कि साहब उठे और बैठे हुए बुड्ढे की कमर पर लात मारकर बुढ़िया की ओर बढ़े।

मैं स्थिति समझ गया था इसलिए साहब को आगे की कार्रवाई से पहले ही रोक अंग्रेजी में कहा—"बैठा रहने दीजिये, किराया मैं

दूंगा इनका।"

"साहब ने मुझे भी धक्का दे दिया और बुढ़िया को भी लात मारी। गाड़ी चलने लगी थी। मैं भी जमींदार था, पैदायशी रईस। फिर कैसे बरदाश्त करता। टाई पकड़कर साहब को आठ-दस चांटे मार, उसे सीट पर धकेल दिया और अंग्रेजी में कहा—"बक-बक की तो अबकी बार जान निकाल दूंगा हरामजादे की। चल दिए साहब! हमारे टुकड़ों पर पलते हैं और...

"साहब फुर्ती से उठा और चैन खींच दी। बूढ़े, बुढ़िया उस समय भय से कांप रहे थे, जब गाड़ी रुकी..

"गार्ड और अन्य कर्मचारी आये और पर्याप्त विवाद तथा संघर्ष के बाद यह निश्चय किया गया कि बूढ़े और बुढ़िया उतर जायें और उन महाशय से मैं माफी माँगू। मैंने साफ इन्कार कर कहा—"मैं इससे माफी नहीं मांग सकता।"

साहब कुछ कहने को था कि मैंने अंग्रेजी में ही कहा—"जमाना बदल रहा है मिस्टर। इस हिन्दुस्तानी पुलिस से तुम आये दिन हमें तंग न करा सकोगे, वह दिन जल्दी ही आने वाला है...

"मुझे और कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। गाड़ी से उतार लिया गया और हवालात में डाल दिया गया। बाद में तार देकर पिता जी को बुलाकर जमानत कराई। फिर भी मुकदमा चला तथा...... फिर हिन्दुस्तान आजाद हो गया। मेरा मुकदमा खारिज।

"जब पुलिस के साथ हवालात की ओर जा रहा था, तभी प्रतिज्ञा की कि जब तक हर हिन्दुस्तानी फस्ट क्लास में बैठने के काबिल न हो जाए, तब तक इसमें सफर करने की कोशिश न करूंगा।"

कविता कुछ कहना चाहती थी, मगर रनवीर बिना उसकी ओर ध्यान दिए कहता गया—"इसके बाद इन्हीं सचिन से मिला। साइन्स के स्टूडेंट थे। मेरी योजना इनका मस्तिष्क? मैं गोपाल से रनवीर हो गया।

"पर आज तो भारत स्वतन्त्र है।" कहा कविता ने।

"मगर आज के मिनिस्टर, एम० एल० ए० आज भी फर्स्टक्लास में सफर करते हैं। यह भी इच्छा रखते हैं कि उस डिब्बे में गन्दे धूल से लिपटे ये हिन्दुस्तानी न हों; क्योंकि इससे उनकी मर्यादा भंग होती है।"

"यह तो सदा होता रहेगा। तुम इसे कभी रोक न सकोगे। ऊंच नीच की प्रवृत्ति भगवान की देन है। फिर कैसे परिवर्तन होगा ?"

"कविता ! यह तुम नहीं, यह भारत की नारी कह रही है। उसकी ममतामयी आत्मा कह रही है।"

रनवीर ने अपने वक्ष पर हाथ रख लिया। दर्द फिर बढ़ गया, वह लेट गया।

कविता बोली—"यह विवाद का समय नहीं। इस समय तुम आराम करो।"

"पर तुमने वचन नहीं दिया।"

"दिया……!"

"तब ठीक है।" रनवीर हंसने लगा।

सचिन उसको दवाई पिला रहा था कि गाड़ी एक स्टेशन पर रुक गई एक आदमी उस डिब्बे में घुसा और बरावर की सीट पर बैठ गया।

सचिन ने गौर से उसके चेहरे को देखा। कुछ विशेष देखा और रनवीर की कुहनी पर झटका दिया।

आगन्तुक और रनवीर ने एक दूसरे को देखा।

पूछा उसने—"कहां जायेंगे आप लोग।"

कविता कुछ कहने को थी कि रनवीर बोला—"अभी निश्चित नहीं कर पाये।"

"क्यों ?"

"आपको मतलब ?"

"यूं ही पूछ रहा था, आये कहां से आप ?"

"जहाँ से भी आप समझें।"

आगन्तुक ने अपना रुमाल निकाल उसकी ओर बढ़ाया और यह कहते हुए उठ खड़े हुए--"अब समय निकल चुका है मिस्टर रनवीर हैंडस अप।"

सचिन कांप गया। उसके हाथ में रिवाल्वर था और हाथ चेन की ओर बढ़ रहा था।

कविता सकपका गई किन्तु···

झटके से रनवीर ने अपना पांव लेटे-लेटे ही उसके पाँव में दे मारा और···

मुंह के बल साहब सीट पर गिर पड़े।

रनवीर उसके वक्ष पर बैठकर बोला—"कैसे पता तुझे। बोल कौन है तू। रिवाल्वर दूर जा पड़ा था। सचिन उसे उठाये हंस रहा था और कह रहा था—"देख लिया मिस्टर! रनवीर का नहीं, आपका समय निकल चुका है।"

वह कह रहा था—"छोड़ दो, बचोगे अब तुम नहीं, फिर क्य मुझे मारते हो ?"

"कैसे नहीं बचूंगा ?"

"उस दिन खून के धब्बों के सहारे तुम्हारे घोड़ों की एड़ों का पीछा कर मैंने सब कुछ, सुरंगें और उन सब का हाल चाल देख लिया। यह भी पता कर लिया कि तुम रनवीर नहीं गोपाल राठौर हो।"

"फिर···?"

"सब अड्डों की रिपोर्ट एस. पी. को दे मैं यहां आ रहा हूँ। यहीं मैंने तुम्हारी बातों से चलती गाड़ी में बाहर फुटबोर्ड पर खड़े होकर

जाना कि तुम्हीं गोपाल राठौर हो।"

"उफ..." रनवीर झल्ला उठा। कविता ने गलती की। लाहरवाही बरती...उसी के कारण उसे उस दिन लौटने का आशीष रनवीर को नहीं देना चाहिये था।"

"जब तुम अगले स्टेशन पर पकड़े जाओगे सब पता चल जाएगा।" आगन्तुक फिर बोला।

"नामुमकिन! जीते जी मेरे हाथों में हथकड़ीडाल दे वह सरकार अभी नहीं जन्मी।" कहकर रनवीर ने गोली चला दी।

आगन्तुक की तलाशी रनवीर शीघ्रता से लेकर कविता से बोला—"अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही उतर जाना। कपड़े बदल कर तैयार रहो। और हाँ यह लो यह अपने चेहरे पर चढ़ा लो, सचिन बाल और कपड़े दो इसे जल्दी।"

"सचिन कूदो!" रनवीर ने कहा—"स्टेशन नजदीक आ गया तो..."

रनवीर चलते-चलते बोला—"आसमान और जमीन रहे तो मैं रात को १२ बजे जयनाथ के सिरहाने बैठे हुए तुम्हें पाऊंगा।

रनवीर और सचिन चलती ट्रेन से कूद गए। कविता पहले कपड़े नीचे फेंक कर तैयार हो कर बैठ गई।

कविता दूसरी ओर का दरवाजा खोले खड़ी थी, ज्यों ही गाड़ी धीमी हुई, वह फुट बोर्ड पर और रुकते ही दूसरे डिब्बे में।

इस डिब्बे से कविता निकल कर जब प्लेटफार्म पर आई तो पुलिस मैन खड़ा था एक बाहर। कविता ने पहचाना पिछले स्टेशन पर भी था यह।

अपने साथियों को अस्वीकृति सूचक सिर हिलाकर उतर गया। प्लेटफाम से हट, कविता ने सुख की सांस ली। गाड़ी चल दी तो सोच रही थी वह, आदमी पत्थर हो सकता है सोना था पर, यह रनवीर तो चट्टान है। अन्दर ही अन्दर ज्वालामुखी सुलग रहा है, पर यह खड़ा है निश्चिन्त, निर्भय।

पेंतीस

कविता ने जब जयनाथ के कमरे में प्रवेश किया तो वह खाट पर तकिये के सहारे लेट रहा था। कुमुद उसके पायताने बैठी पांव में पट्टी बदल रही थी और एक ग्राम्य व्यक्ति पास ही में बैठा अखबार पढ़ रहा था।

कविता ने देखा ··· जयनाथ का म्लान, आभाहीन मुख। न उसके शरीर पर वह क्रान्ति रही थी और ओजस्विता। वह फक रह गई।

इधर जय का भी यही हाल था। वह देख रहा था कि बाय कट फेशियण्ड महिला उसके कमरे में घुस आई है।

"कौन है?"

कुमुद से कहा उसने—"देखो कुमुद कोई तुम्हारी परिचित आई हैं शायद।"

मुंह फेर कुमुद ने देखा तो नमस्ते करते हुए बोली—"परिचित हैं तो नहीं, पर परिचय हो जायेगा।" वह कुछ कहे इससे पूर्व ही एक अन्य महिला ने श्वेत कपड़े पहने कमरे में प्रवेश किया।

कुमुद उसे देख आश्चर्य चकित रह गई। जय बोला—"आप लोग बैठिये।"

वह महिला खड़ी न रह सीधी जय के सिरहाने तक चली गई—"शोहरत के सातवें आसमात पर चढ़े आखिर ··?"

जय और कुमुद दोनों आश्चर्य चकित उसका मुंह देखते रह गए। जय का स्वर अस्फुट सा हो बिखर पड़ा—"शम···! शमशा तुम यहाँ?

अखबार पढ़ने वाले सज्जन ने देखा कि दो महिलायें और कुर्सी एक है, वे उठकर बाहर चले गए।

शमशा ने कविता से कहा—"आप बैठिये कुर्सी पर। मैं तो इनके कदमों में बैठूंगी।"

"नहीं नहीं।" कुमुद उठकर बाहर कुर्सी लेने चली गई।

शाम्शा बैठ गई तो कहा जय ने—खबर तो अपनी भेज नहीं सकता पर दिल कितना तड़प रहा था तुम से मिलने को।"

शम्शा हंसती रही......

"कुछ बोलो न।" जय ने कविता की ओर देखते हुए कहा।

कविता कुछ सोच समझ कर उठने लगी तो जय ने पूछा—'आप ने अपना परिचय दिया नहीं और......"

कविता ने कहा—"एकान्त में दिया जा सकता है।"

जय उसके स्वर को पहचानने की कोशिश करता हुआ बोला—"मेरे लिए यह एकान्त की तरह ही है।"

"और वे......?"

"दरवाजा बन्द कर दीजिए। भीतर नहीं आयेंगे।"

"अच्छी बात है कविता ने द्वार उड़का दिया।

और......

सिर पर से बाय कट की झिल्ली उतार कर अपने बाल खोले तो जय फौरन खाट से उठता हुआ उसके पैरों की ओर झुका—"भाभी।"

कविता उठाते हुए बोली—"बीमार हो जय, लेटे रहो। तुम मुझसे... तो तुम्हारे......"

"अभी न कहना भाभी ! अन्यथा नाराज हो जाऊंगा अब।"

शम्शा स्तम्भित सी देख रही थी कि कुमुद ने दरवाजे पर थाप दी। कविता ने उठकर दरवाजा खोल दिया।

कुमुद भीतर घुसी तो कविता को सामने खड़ी देख बोली—"आप कब आयीं।"

"अभी तो।"

"समझ गई।" कुमुद ने कहा—"तो पहले चाय बनाऊं।"

"नहीं।"

"वाह! यह भी कोई बात हुई। मैं अपने घर के बारे में आपसे क्या राय लूँ?"

"मैं इसकी मालकिन जो हूं।"

"कैसे?"

"पूछो जय से।"

जय बोला—"मेरा घर ही कहाँ है भाभी, जो उसकी मालकिन बनोगी।"

कविता बोली—"तीस-तीन नारियां जहां हो, वह घर नहीं तो क्या है? वह तो स्वर्ग है जय।"

फिर शम्शा की ओर देखकर बोली—"आपको पहले कभी नहीं देखा।"

जय ने ही जबाब दिया—"प्रेयसी को भाभी के सामने लाता भी कैसे?"

"ऐसा!" कविता ने उसका माथा चूम लिया बोली—"तो फिर देवरानी कहूं इन्हें।"

कुमुद फिर चाय लेकर आ गई। कविता की अन्तिम बात उसने सुन ली थी। उसका मतलब भी बिना बताए ही समझ गई थी। घुसते ही बोली—"हाँ इन्हें देवरानी कह सकती हैं आप।"

"और तुझे……तुझे क्या कहूं?"

"कुछ नहीं।" कुमुद ने कहा। उसकी आंखे भर आयीं। चाय रख वह बाहर चली गई।

जय ने कहा—"यह अच्छा नहीं हुआ भाभी। उसका दिल दुखा।"

"क्यों?

"तुम नहीं समझोगी।"

''बताओ न।"

जय कहने लगा–"इस दुनियां में इतने बुरे और अनचाहे काम होते हैं जिनकी इंतहा नहीं। सोचो किसी ने कुछ बुराई उससे भी की है।"

कविता ने कहा–"साफ-साफ कहो जय बात क्या है ?"

' वह गर्भवती है।" जय लम्बी सांस खींचकर बोला।

"तुमसे ?"

"नहीं।"

"फिर।"

"पता नहीं। कोई मुझसे पहले किराएदार था इनके यहां।"

' फिर अब !"

'घर से भागीं थी। तुम्हें गाड़ी में मिल गयी।"

कविता चुप हो गई तो शम्शा ने कहा—"उनके पास मैं जाती हूं।"

और वह उठकर बाहर चली गई।

कविता ने पूछा—"सच बताओ तुम्हें मुझसे नफरत नहीं।"

"कैसी बात कहती हो भाभी ? यह मैंने जिन्हें अपनी प्रेयसी बताया है, जानती हो कौन है ?"

"नहीं !"

"अपने शहर की सबसे मशहूर तबायफ।"

"जय···।" कविता के मुंह से निकला और एकटक देखती रह गई।

जय हँस रहा था।

छत्तीस

कुमुद को पहले अन्तरवेदना हुई। इससे पहले इतनी कभी न हुई थी। कमरे से बाहर आकर वह सोचने लगी–"मैं भी कैसी आकाश बेल बो रही थी बिना बीज फिर मुरझाने का पश्चात्ताप कैसा ? यह तो मिलनी ही थी।

"किसी को अपने हृदय प्राण सतीत्व का रस पिला इस जय से वह आस लगाए बैठी थी कि मेरे दुखों का निवारण होगा।

"भूल गई थी कि उसके पास भी हृदय है। वह भी किसी को प्यार करता होगा, और फिर मैंने तो डायरी पढ़ ली थी। फिर भी क्यों नहीं समझ सकी। जिस शम्शा के कहने पर वह सातवें आसमान पर पहुंचने की सोच रहे हैं। उसे छोड़······

"फिर मुझे दुतकार क्यों नहीं देते ? उस दिन चलते समय हृदय से क्यों लगाया था ?

अभी वह कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रही थी कि शम्शा आ गई। पास बैठकर उससे कहा बहिन-"एक बात पूछती हूं।"

"पूछिए।"

"आप वहाँ से चली क्यों आयीं ?"

"यूं ही !"

"ऐसी बात तो नहीं।"

"ज्यादा जानने से आपको लाभ नहीं।"

"हो तो !"

कुमुद के रुंआसे स्वर में तीक्ष्णता आ गई—"नहीं होगा।"

शम्शा ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया—"देखो, कुमुद बहिन, तुम हो तो मैं अभी यहां से चली जाती हूं पर यह रूखी बात न कहो।"

कुमुद को अपने व्यवहार से अनौचित्य का अब ज्ञान हुआ। कुछ भी सही उसे यूं न आना चाहिए था। आ भी गई तो शम्शा से इतना तीक्षण व्यवहार······वह चली नहीं शम्शा बहिन, मुझसे गलती हुई चलो।

कुमुद और शम्शा जब कमरे में आयीं तो जय और कविता चुप थे। जय ने कहा—"चाय पीकर तुम इन दोनों की आत्मकथा सुनो और उसके बाद निर्णय करो कि तुम्हारी देवरानी कौन होगी?"

"तुम्हारा मत किधर है?"

"अपना मत मैं बाद में दूंगा!"

"मेरे निर्णय से पूर्व।"

"हां!"

"तब ठीक है। मगर मुझे तुमसे एक बात पूछनी है।"

"क्या?"

"वह बिल्कुल अकेले में ही होगी।"

"अच्छा तो फिर हम दोनों चली जाती हैं।" चलो कुमुद बहिन, शम्शा फिर उसका हाथ पकड़ कर बाहर ले गई। कुमुद को लग रहा था। यह सब तो एक नाटक हो रहा है।

सैंतीस

शान्त सौम्य मुद्रा में घर में घुसते हुए जब उतनेन रवीर से कहा—"आइए राठौर साहब!" तब रनवीर लौटने को हुआ।

जाय हँसता हुआ बोला—"कोई आशंका नहीं रनवीर जी आ जइये। मैं जय ही हूं।"

"आओ न भइया।" कविता उठती हुई बोली।

रनवीर सचिन भीतर आ गए तो उसने कहा—"मुझसे भाभी ने सब बता दिया आपके बारे में। कुछ आपत्ति तो नहीं है आपको ?"

"नहीं !" रनवीर बैठ गया।

"ज्यादा चोट तो नहीं आई थी।"

"कोई खास नहीं।"

"भाभी, तो फिर चाय मंगाई जाय

"जी नहीं ! कुछ आवश्यक बातें करनी है

"वह मैं सब भाभी से जान चुका हूं। आपका 'ग और मेरा मा अलग-अलग है फिर भी मजिल एक है। मैं आपके प्रति निष्ठावान हूं, श्रद्धालु हूं।"

"किन्तु मुझे माग के विषय में ही बातें करनी हैं।"

"क्यो करनी चाहते हैं आप ?"

'क्योंकि आपने मेरे मार्ग को गलत बताकर मुझे गोली मारी हैं। आप पहले आदमी हैं जिसे मेरी ओर से पहला गोली का जवाब नहीं मिला।"

"इसीलिए तो मैं आपके प्रति इतना श्रद्धालु हो गया। राष्ट्रभक्ति का इतना वास्तविक अर्थ और साहस तथा पौरुष का साक्षात्कार मुझे जीवन में पहली बार हुआ। फिर भी······"

"उस फिर भी के बारे में ही तो जानना चाहता हूं।"

'एक बात पूछूँ रनवीर जी ! जय ने कहना शुरू किया—"एक माँ के पांच बच्चे। पाँचों अलग-अलग प्रकृति, मिसाल के तौर पर एक डाकू हो, एक राजा, एक भिखारी, एक श्रमिक और एक पूंजीपति। माँ की

उनके बारे में क्या विनीत भावना होगी ?"

रनवीर ने भी उत्तर न देकर सीधे ही प्रश्न किया—"एक माँ के पाँच पुत्रों में से एक······शेष चार का गला काट रहा हो तो माँ क्या करेगी ?"

जय संभल कर बैठ गया। रनवीर के पास व्यक्तित्व था, विषय शक्ति भी थी और अनुभव की गहराई। जय ने पूछा—"बाकी चार उस एक को मिलकर मार दें तो माँ क्या करेगी ?"

रनवीर ने हंसते हुए कहा—"वह एक, बाकी चार को मार दे तो माँ क्या करेगी ?"

"पांचों ही लड़कर मर जायें तो माँ क्या करेगी ?" जय ने प्रश्न किया।

"लहू का घूंट पीकर जियेगी या फिर आत्महत्या कर लेगी। मगर मैं पूछता हूं जय जी एक माँ के चालीस करोड़ बेटे-बेटीं हों, उनमें से एक करोड़ बाकी सबका खून पियें। अपनी बहिनों के साथ बलात्कार करें, व्यभिचार के अडडों पर जाने को कहें वासना का नंगा नाच पैसों और मजबूरी का फायदा उठाकर कराएं, दुकानें सजायें तो वह क्या करेगी ? तुम उसके बेटे हो तो क्या करोगे बोलो।" रनवीर क्रोध में काँप उठा था।

जय का भी शरीर रोमाँचित हो आया। धीमे से बोला—"केवल मानने से ही तो वह सत्य नहीं हो जाता।"

"हो जाता है। मानने से नहीं, अनुभव करने से हो जाता है। अपनी भाभी से पूछिये। घर के भीतर बैठी शम्शा बानो और कुमुद देवी से पूछिये। इन्होंने हिंदुस्तान के आदमी देखे हैं या नहीं। उनका अर्थ समझा है या नहीं।

"जय बाबू निर्वासना नारी के पीछे शरीर की भूख के लिए भागने वाले समाज प्रतिष्ठित आदमी को आप क्या दण्ड देंगे ?"

"भोली-भाली लड़की को प्रेमजाल में फंसा उसका सतीत्व मर्दन

करने वाले उन्हें समष्टिगत तलवारों की धार पर नि:शंक असहायतावस्था में छोड़कर जाने वाले इन्सानी हब्शी को आप क्या सजा देंगे ?

प्रीति के झूठे ख्वाब दिखाकर उसकी कोख में स्याह धब्बा छोड़ उसे मण्डियों में वेचने, कोठों पर जहर पिलाने वाले इज्ज़तदार समाजी को आप क्या सजा देंगे। बतलाइये ?

"उसके वाद उन सब चीजों से जो पैसा इकट्ठा किया उसके बूते सुख भोगने मजबूर इंसानों की मेंहनत को खरीद अपनी हब्श और जिस्मानी भूख को सोने-चाँदी से खरीदने वाले के साथ आप क्या व्यवहार करेंगे, कहिए ?"

जय के ऊपर रनवीर के शब्दों का तीक्ष्ण प्रभाव पड़ा। सीधा ही पूछ बैठा—"आप कहना क्या चाहते हैं स्पष्ट कहिये।"

रनवीर ने तीन चित्र निकाल कर उसके सामने रख दिए। फिर कहा—"यह हैं आपके परम मित्र नलिन, कविता के पति।" हैं न।

"हां !" जय ने कहा।

और अन्य······आप वे हैं सज्जन जो कुमुद के कमरे पर तीन महीने रहे थे। नाम है विजेन्द्र गुप्त !

"और आप हैं शम्शा को कोठे पर बैठा, उसे व्यभिचार के अड्डे दिखाने वाले···सेठ ·· पहचान गए होंगे ?

"जी हाँ !"

"तो ये तीनों पुरुष आपकी दृष्टि में थाम्य हो सकते हैं मेरी में नहीं।"

रनवीर कहता रहा—

"ये मिस्टर नलिन जिन्होंने सेठ साहब के कहने से कविता से विवाह किया। उसे इनकी कोठी पर भेजा। देख तो कविता ये ही सेठ हैं वे।" कविता की ओर मुड़कर रनवीर बोला।

कविता ने कहा—'उसी का चित्र है यह जिस सेठ के घर के सामने जय और अरुण से उसका विवाद हुआ था।"

रनवीर बोला—"यही हैं वे सेठ कविता, जिन्हें मैंने अपनी गोली मारा, जिनकी रक्षा में इन्होंने मुझे······इन्हीं का प्राईवेट सेक्रेटरी नलिन था जो विवाह के बाद हृदय से तुम्हें चाहता था पर विवश था। अपने मूर्ख जिंदगी के अनुभवों से। गलतियों से। जानती हो तुम्हारे वहां से आने के बाद क्या हुआ? उत्तेजित हो रनवीर बोला, नलिन ने इनके सामने इस्तीफा पेश किया और उन्होंने गोली का इस्तेमाल।"

"इन्हीं सेठ जी ने शम्शा जो कानपुर के प्रसिद्ध सेठ दामोदर दास की बेटी है कोठे की राह दिखाई।

"इन्हीं सेठ की संरक्षता में वह कीर्तन मन्डली चल रही है जिसके नेता ने तुम्हारे साथ बलात्कार करना चाहा था। काम है उसका भोली भाली लड़कियों को फुसलाकर बहका कर. इनके पास भेजना।

फिर एक चित्र को दिखाते हुए रनवीर ने कहा— ये हैं वे साहव जो कुमुद के मकान पर तीन महीने का किराया देकर रहे थे। उसके रूप पर मुग्ध होने के कारण···ये इन सेठ जी के ही फरजन्द हैं।'

रनवीर चुप हो गया तो कविता कंपकंपा रही थी। बोली—"अब तुम यह नहीं कह सकते कि जय इनके साथ सहानुभूति रखनी चाहिए। मैं कसम खाती हूं कि आज के बाद······"

जय ने मुंह पर हाथ रखते कहा—"राठौर जी, यह सब ठीक है परन्तु······"

रनवीर ने कहा—"कानून में यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाय तो क्या दण्ड है?"

"फाँसी!"

"बस तो फिर कानून के संरक्षक, उसके प्रतिपालक उसकी रक्षा नहीं कर सकते तो हमारा क्या दायित्व नहीं कि ऐसे व्यक्ति को दण्ड दें।"

"है पर इस मार्ग पर मैं नहीं चल सकता।"

तब तुम कापुरुष हो। कम्युनिस्ट पार्टी से इस्तीफा देकर तुम

अलग हो गए। अच्छा किया वे राष्ट्र को अपनी बपौती मान रहे हैं। चीन के आक्रमण के समय भी ऐसे बन रहे हैं गोया कुछ देखा ही नहीं। लेकिन सही मानते हुए भी कोई काम न करने की बात मैं नहीं मानता। वह कापुरुषता है निरो कापुरुषता।"

"कुछ भी सही। मैं असमर्थ ही हूं।"

"तब ठीक है।" रनवीर ने कहा-"पर दृष्टिकोण मे साम्यवाद की की श्रेणी पर जाने के लिए जो मार्ग या उपाय आपने अपनाया वह गलत है। यह निश्चित है कि शरीर का जो अंग सड़ गल कर दूसरे अंगों का भी खून खराब करे, सड़ाये वह काट दिया जाता है। सदा से काटा जाता रहा है। यदि नहीं काटा जाता तो आज की अहिंसा की की जयध्वनियों के बीच भी यह फाँसी की सजा न होती। मृत्युदण्ड न दिए जाते।

आज की स्थिति में मृत्यु दण्ड जिन्हें दिए जा रहे हैं वे उनके योग्य हैं या नहीं इसका निर्णय ही कोई करने वाला नहीं। जो निर्णायक हैं वे केवल जनता को बहका कर उसे जयकारा बुलवाकर कुर्सी पर बैठने वाले हैं।

"मैं आज अपने कार्य से प्रसन्न हो गया हूं थक गया हूं, अब आगे चलने में असमर्थ हूं, इसलिए आपके पास आया था, क्योंकि मुझे विश्वास था कि······

"मगर छोड़िये······मेरे थके कन्धों को मृत्यु ही अन्तिम घड़ी तक यह सोचकर विश्राम करने का अवसर नहीं मिलेगा कि उसके बाद भी कार्य चल सकेगा, रुकेगा नहीं।" इतना कह रनवीर ने उठना चाहा, मगर अधिक बोलने के कारण उसके पेट में पुनः पीड़ा हो उठी। बाहर जाकर उसने एक खून की कै की और बोला—'नमस्कार जय बाबू अन्तिम और द्वितीय भेंट पर।"

जय ने उनका हाथ पकड़ लिया बोला—"आपकी हालत बहुत खराब है, न जाइये।"

रनवीर की तबियत खराब है, आप अपने घर रोक रहे हैं लेकिन वे भी तो हैं जो जख्मों से भरे पड़े हैं और कोई सहानुभूति के दो शब्द भी कहने वाला नहीं है। क्षमा कीजियेगा जय बाबू। धन्यवाद !"

रनवीर चला गया।

किन्तु जय कुछ सोचता रहा।

आज वह असमंजस में पड़ गया था।

अड़तीस

जय की समझ में शम्शा का तर्क नहीं आया। उसने पूछा—"क्यों मेरा जिसने कुछ बिगाड़ा नहीं उसका कत्ल करूं। यही कहती हो तुम। मेरी यह राय नहीं है।"

शम्शा ने कहा—"तुम्हें चाहिए कि उनसे बदला लो। जो हमारी अस्मतों के लुटेरे है।" ऐसे बदला लो जैसे रनवीर ले रहा है। उसकी तो कोई सगी बहिन नहीं लूटी गई, उसके घर तो कभी कंगाली नहीं फटकी। फिर भी वह यह सब कर रहा है। तुम अगर कल बता देते तो मैं उस आदमी के पैर धोकर पीती, जिसने उसका कत्ल किया जो मुझे बाजार की चीज बना गया। जिसने मेरे जिस्म को सोने चाँदी से तौला, जिसने मेरे जिस्म को हबिश बनाया और छाती के दाग को जिगर का नासूर कर दिया। मेरे मुंह पर स्याही पोत और बदनसीबी बेवफाई में ला पटका जहां लोग मेरी खुशामद करते हैं, मुझ पर पैसा बरसाते हैं फिर भी······"

"यानी तुम भी मुझे डाकू बनने को कहती हो ?"

"कहती नही, इल्तजा करती हूं।"

"हिन्दू औरत होकर भी।"

शम्शा दो क्षण के लिए तो झेंपी ठहरी और फिर बोली—"यह भी तुम्हें रनवीर ने बताया होगा। खैर, सुनो वाकई मैं हिंदू औरत हूं, तुम्हारी तरह ही एक शरीफ मां-बाप की बेटी थी। मगर ये जिस्मानी दरिंदे ! उफ, उफ ! भूल क्यों रहे हो कि शत्रुओं और अत्याचारियों का नाश करने के लिए नारी दुर्गा, चंडी और काली का रूप धरती है। अगर मेरी एक वास्तविकता से परिचित हो ही गए हो तो मैं तुम्हारे प्रेम की पुजारिन करबद्ध प्रार्थना करती हूं कि इन मेरे सतीत्व के तक्षकों······का संहार करो।"

"नहीं शम्शा नहीं। यह मेरी आत्मा के विपरीत है।" जय ने उस के बदलते स्वर और वाणी को पहचानते हुए कहा।

"तब मुझे रनवीर की तरह ही कहना पड़ता है कि तुम कायर पुरुष हो। बुजदिल हो फाँसी से डरते हो।" शम्शा उठी और चली गई।

फिर कुछ क्षण बाद आकर बोली–"कविता भाभी और मैंने निश्चय किया है कि तुम कुमुद से ही विवाह करो। यदि तुममें साहस हो तो······"

उसके सामने खड़े होकर जय ने रोकने की कोशिश करते हुए कहा "सुनो तो शम्शा !"

किन्तु यह कहती चली गई—"यदि किसी दिन सुनूं कि जयनाथ ने एक स्त्री की लाज लूटते हत्यारे को मारा उसे फांसी की सजा दी गई। तब मैं भी प्रसन्न होऊंगी। मगर यह देखकर कि तुम अपने अजीज की अस्मत लुटते देखकर भी चुप बैठे सिद्धांतों का व्यापार कर रहे हो, मेरे पास तुम्हारी और बात सुनने की फुरसत नहीं।"

रात को जब सब चले गये तो जय को अनुभव हुआ कि जैसे उसकी आंखे अभी अन्धेरे में सोना नहीं चाहती। वे तो चलचित्र बन गई हैं। जिस पर रनवीर नायक बना घूम रहा है। वह सोचता रहा। रनवीर

का एक एक शब्द हृदय को झंझोड़ने लगा। वह व्यथित हो गया। नलिन, कविता कुमुद और शम्शा। उफ, एक इंसानी दरिन्दा।

पति···जो पत्नी को व्यभिचार के लिए प्रेरित करे······फिर भी निर्दोष !

लड़की जो विवाह से पहले मां बनने वाली हो, देवी सरीखी !

वैश्या···जिसकी अस्मत किसी भी सती से कम नहीं।

और शम्शा की बात याद आते ही उसके कानों में गूंज उठा···

"पास मेरे बैठकर मत देख मैं क्या चीज हूं।
हर कदम को चूमती जो खाक, वह नाचीज हूं॥"

जय बिस्तर से उठा और शम्शा की चारपाई के पास जा खड़ा हुआ। वह जाग रही थी, उसे देखते ही उठ बैठी।

"तबियत नहीं लग रही थी सोचा तुमसे ही चलकर बात करूं।" जय ने कहा।

बात शुरू हो गई। बात की बात में बात बढ़ गई। शम्शा ने कहा है— सुना है तुमने रनवीर की योजना नामंजूर कर दी है। तुम्हें तो चाहिए कि तुम गमगीनों की मदद करो। हमारी बेइज्जती के बदले लो।"

आज कुमुद की तबियत कुछ खराब थी। भीतर जा उसने माथे पर हाथ फेरते हुए कहा– 'कुमुद आज तुम्हारी तबियत ज्यादा खराब न हो तो आज मैं सन्ध्या को तुमसे अपना विवाह कराना चाहता हूं।'

कुमुद डगमगाया हृदय लिए उठ बैठी। उसके पांव की धूल मस्तक में लगा उसने कहा—"इस दिन के लिए ही तो तरस रही थी।"

जय वहीं खड़ा रह गया। उसके अन्तर में जो तीव्र ज्वाला धधकने लगी थी, उन ज्वालाओं की लपटों में खड़ी शम्शा जैसे गाने लगी।

'मेरे कदमों में मुहब्बत की कसम खाई गई।
मेरे आक्रोश में सौ बार लुटा है सोना॥"

उन्तालीस

कल्पना के सिंहासन पर बैठ सेठ दामोदरदास की लड़की की फरियाद सुनने लगा जय। उसके अपमान और प्रताड़नाओं भरे जीवन की वकालत करने लगे उसके बोल—

"अगर तारीख मेरी जिंदगी की कुछ लिखी जाये,
लिखा जाय कि मैं इस घर कहां से और कब आई।
तो मेरे इन गुनाहों का अगर हो रहा गुजर कोई,
बता देगा शरीफों की हिमाकत खींच कर लाई।।"

रनवीर के विवाद और उसके साथ शम्शा की हसरत भरी आखिरी तमन्ना ने जय को आलोड़ित कर दिया। जितना भी वह चाहता था कि उसे याद न करे उतना ही उसका वह जाते समयका रोषपूर्ण चेहरा उसके सामने आ जाता। अपनी पूर्व परिचित वाणी में कहता—

"सोने चांदी की तराजू में प्यार मेरा तुला,
ऊंचे महलों की अटारी में बिका दिल मेरा।
मेरे जजबात की अब और कदर क्या होगी,
सजदे करके बुलाया गया कातिल मेरा।।"

"शम्शा सोनी के बाद तझे ही तो मैं चाहता था। तुझे ही तो अपनाया था, तू भी छोड़ गई।" जय बड़बड़ाता उठा।

"जिसकी कीमत चन्द चाँदी के सिक्के हैं, वह मेरे मुंह पर दस हजार मारकर भी मेरे पौरुष को ललकार गई।

"तम का पुरुष हो बुजदिल हो।"

जय के स्वर-स्वर में ही यह शब्द गूंज उठा। गूंज उठी उसकी

शिकायत।

"मैं......मैं......वह मर्द नहीं शम्शा मैं। तू जानती है तेरे जिस्म पर मैंने चांदी नहीं बरसाई। तुझे पता है कि तेरे रूप माधुर्य की सौंगध मैं नहीं खा सकता।"

फिर......

फिर क्यों इस तरह छोड़ गई मुझे।

जय की अन्तर ज्वाला धधकती रह गई। न उसके बुझने का कोई मार्ग था न शांत होने का। ताप बढ़ रहा था उसके मन में, प्राणों में।

वह सोचने लगा रनवीर इन्हीं फरियादों को सुनकर डाकू बन गया। सरकार की आँखों के सामने उसके अस्तित्व को चुनौती देता हुआ कहता रहा कि मैं अस्मतफरोश नहीं, उनका निगाहवान हूं। संरक्षक हूं।

है तो वह कानून का शत्रु ही......

कानून शब्द पर ध्यान जाते ही जय की विचारधारा करवट बदलने लगी कानून का क्या शत्रु है। मनुष्य के अपराध की अन्तः प्रवृत्ति और मूलकारणों को स्वार्थ रहित और अविक्षिप्तावस्था को पाकर तो कानून स्वय निरपराध कहता है। मूल कारण उद्देश्य को दृष्टिगत करे तो ये सेठ और इज्जत के लुटेरे ही उसके शत्रु हैं......कानून के।

तब फिर रनवीर किसके विरुद्ध है। सरकार के। सरकार से मतलब यही कुर्सी के लिए मान मर्यादा सत्य और न्याय तक का क्रय करने वाली विभिन्न पार्टियाँ।

यह तो सरकार नहीं।

फिर......

पैसे और नारेबाजी के धोखे में खरीदे हुए वोटों को पाकर शासक नहीं बना जा सकता।

इसका मतलब ?

यही कि रनवीर ठीक है।

नहीं वह हत्या करता हैं। वह गलत है परन्तु······हत्या तो वह उन्हीं की करता है जो हत्या को पाप नहीं मानते। धन तो वह उन्हीं का छूटता है जो धन को लूटकर इकट्ठा करते हैं।

मगर तुम क्या करते हो ? मगर तुम तो अपने वायदे को आखिरी वक्त तक नहीं निभा सकते। क्या आरज की थी तुम्हारी माँ ने आखिरी वक्त : पूरी की तुमने······उसे लगा जैसे श शा और कविता एक साथ उसको धिक्कार रही हैं।

हाँ नहीं कर भी नहीं सकता। खून की धार में प्रतिरोध की ज्वाला मैं नहीं बुझा सकता।

तब तुम कापुरुष हो। नपुंसक हो। कविता कह उठी उसके अन्तर में।

"हूं हूं, कापुरुष हूं।" जय ने दोनों कानों पर हाथ रख लिए। चुप होकर बैठ गया। कुछ भी सोचना बन्द कर दिया। याद करना भी भूल जाना भी।

चालीस

१०-५ मजदूरों और अन्य पड़ोसियों की उपस्थित में जय का विवाह संस्कार संपन्न हो गया। न बाजे बजे न शहनाई। सिर्फ संस्कार हुआ और उसका हाल पूर्ण विवरण सहित कुमुद ने माँ को तुरन्त लिख भेजा।

दोनों ने मिलकर निश्चय किया कि आने वाली लोक अपवाद की दृष्टि से बचने के लिए उचित यह ही होगा कि वे कहीं और जाकर रहें।

जय ने कहा—"सोच लो कुमुद ! आर्थिक तंगी थोड़ी बहुत उठानी पड़ेगी।"

"सो बात नहीं। एक तो मैं ही काफी पैसा घर से ले आई थी। दूसरे जाने से पहले शम्शा बहिन दस हजार रुपये मेरी सन्दूकची में रख एक चिट्ठी डाल गई थां। मेरे होने वाले बच्चे से नाम।"

जय ने कहा—"तो फिर जाओ तैयारी कर लो मैं प्रातः चलूंगा।"

"प्रातः ही कर लूंगी।" कुमुद उसकी चारपाई पर आकर लेट गई। "आज तो नहीं कहोगे मुझ से ऊपर या नीचे जाने के लिये।"

जय हंस पड़ा। रात बीतने लगी।

बीत गई।

प्रातः जब कुमुद सामान ठीक कर रही थी और जय एक समाचार पत्र पढ़ने में संलग्न था तो अचानक ही वह बुरी तरह कह उठा पागलों की भांति अखबार को मसोस कर चिल्ला उठी सामान खोल दो कुमुद मैं आज बाहर जा रहा हूँ। कल-परसों तक आ जाऊँगा।

"क्या हुआ ?"

"कारण मत पूछा करो हर बात में, कुछ रुपये दो बस।"

"कितने ?"

कुमुद ने नोट लाकर उसे दिए तो जय ने उठाते हुए कहा···"तुमने मेरी डायरी पढ़ी थी न ?"

"हां !"

तो यह समाचार भी पढ़ लेना। उंगली रखकर वह एक समाचार पर तीर की तर निकला चला गया।

कुमुद पढ़ने लगी—

विधवा द्वारा आत्महत्या।

················

मीआ बरेली। यहाँ की एक युवा विधवा सोनी देवी ने कुए में कूद कर आत्महत्या कर ली। उसकी जेब से तीन लाइन का एत्र मिला, जो

पुलिस ने अपने कब्जे में कर लिया। पत्र में लिखा था—

"जय !"

"तेरी सोनी के साथ बलात्कार किया गया था।"

सोनी !

इकतालीस

रनवीर की हालत दिन प्रतिदिन बिड़ती ही गई। कविता उसकी परिचर्या पूर्ण तन्मयता से कर रही थी। उसके मस्तिष्क में न जाने क्यों दिन रात एक ही बात घूमती रहती है। मेरे पति मुझे प्यार करते थे, वे विवश थे। उफ ! मैं पतिहत्या की दोषी हूं। मैंने ही उनके प्राण लिये हैं। वह अपनी शंकाओं के विषय में रनवीर से बात करना चाहतीं थी, किन्तु उसकी दिन प्रतिदिन गिरती हालत को देख चुप रह जाती कि एकदिन रनवीर ने ही अचानक उससे पूछ लिया क्या तुम्हें कुछ··· कविता ! बहुत उदास रहती हो।

कविता ने कुछ कहना चाहा किन्तु उसकी आँखों में पानी भर आया।

रनवीर को याद आ गया। वह आहिस्ते से बोला—"मैं नलिन को बहुत करीब से जानता था कबिता। घटों-घंटों उससे मेरी बात हुई हैं। अब जब दिल्ली मया हूं उससे मिलकर आया हूं। उसके बिछुड़ने का जो दुख तुम्हें है बह मुझे भी है। एक समय मैं उसकी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता से ईर्ष्या करता था। एक समय ऐसा भी आया जब मैं उसके कार्यों से खिन्न था। लेकिन ऐसा दिन कभी नही आया कि मैं उससे

घृणा कर सका होऊं। उसकी ग्रात्मा की पवित्रता ग्रौर सच्ची मित्रता का प्रशंसक हूं।

कविता स्वयं को रोक न सकी—"परन्तु क्या वे मुझे……"

"यही प्रश्न शायद तुझे चैन नहीं लेने दे रहा है कविता! तो सुन मनुष्य परिस्थितियों के हाथ खिलौना है। कब क्या हुग्रा, क्यों हुग्रा यह समझे बिना न हमें किसी से घृणा करनी चाहिए न ईर्ष्या। दस वर्ष पहली बात है नलिन उन दिनों उसी बस्ती में रहता था जिसमें मैं ग्रभी उससे मिलकर ग्रा रहा हूँ। उसकी सुन्दरता ग्रौर शील स्वभाव से ग्राकर्षित हो एक लड़की उसके घनिष्ठ सम्पर्क में ग्रा गई। ग्रौर वह तब लगभग प्रतिदिन मिलते थे। लड़की विवाहित थी किन्तु उसका पति एक दुर्घटना में मर चुका था। मैं इस बात को महसूस करता था कि एक विधवा से उसका संबंध ग्रधिक बढ़ना दोनों के लिए हानिकारक होगा, परन्तु उससे कह न पाता था। यूं ही दिन बीत रहे थे कि एक दिन नलिन को ग्रपनी कोठरी में पड़ा एक पत्र मिला उसमें लिखा था कि वह विधवा ग्रत्यधिक संकट में है उससे वह शीघ्र मिले। स्थान का नाम भी दिया हुग्रा था ग्रौर समय भी।

नलिन निश्चित समय ग्रौर स्थान पर जब पहुँचा तो वहां वह विधवा पूर्णत मूर्छितावस्था में पड़ी थी। उसके हाथ-पाँव बँधे थे ग्रौर नग्नावस्था तथा स्थिति से व्यक्त था कि उससे बलात्कार किया गया है। समय रात का था ग्रौर हाथ में बेटरी थामे उसे…कि ग्रचानक चारों ग्रोर से ग्रनेक बैटरियाँ जल उठीं। उसके पास १०-१२ व्यक्ति एकत्रित हो गये।

नलिन को काटो तो खून नहीं। उन सबने उसे जकड़ कर पकड़ लिया। उनमें सबसे ग्रागे सेठ जमींदार दास थे; जिन्होंने कहा था-"ऐसा काम करने से पहले तुम्हें डूब मरना चाहिए था। शर्म की बात है। एक विधवा ग्रौर……

नलिन ने कुछ कहना चाहा, तो वे गरज उठे—"हमसे क्या कहता

है ? अभी पुलिस आई जाती है, उसे ही सफाई देना और फिर आहिस्ते से बोले—"यह तो मर गई मालूम होती है। उफ! कितनी बेरहमी से......अब !

युवा नलिन ने शर्म से आँखे मींच ली—"मैंने कुछ नहीं किया। मैं निर्दोष हूं।" वह बोला।

सेठ उसके पास चले गये और आहिस्ते से उसके कान में बोले—"नलिन! सफाई का वक्त नहीं जल्दी यहां से भाग चल, क्यों जवानी बरबाद करता है। चीख सुनकर यह आदमी आये हैं, सब मेरे हैं इन्हें मैं समझा लूंगा। कोई और आ गया तो सब बात बतानी पड़ेगी। चल भाग जल्दी से।"

और कुछ सोचे बिना नलिन सेठ की बात मान गया। बाद में पुलिस ने छानबीन की। बाद में पता चला जिसके आधार पर यह विख्यात हो गया कि पुलिस नलिन की तलाश में है, क्योंकि उसका पत्र लाश के पास पड़ा मिला जो नलिन का नाम था। उसी दिन से नलिन सेठ का अनूचर हो गया। रूपोश होकर वह दिल्ली में रहने लगा। बाद में जो कुछ हुआ, वह आँख मींचकर किये गया।

"और मैं, मैं उनकी जिन्दगी में जो आई, क्या वह उन्होंने छल के लिए विवाह किया था ?"

"नहीं, उससे विवाह तो उसने सच्चे प्रेम के कारण ही किया था। किन्तु सेठ ने उसे जो सहयोग दिया था वह उसकी रूप माधुरी पर मुग्ध होने के कारण था। उस समय नलिन यह न समझ सका और बाद में बार-बार इसके लिए पछताया। उफ...क्या जिदगी थी उस बेचारे की......? मैं कल ही उससे मिला था।"

"रही उसके मरने की बात जो मैंने उस दिन कही थी पर आज पता चला कि वह मरा नहीं जिंदा है हत्या और फरारी के अभियोग में उस पर मुकद्दमा चल रहा है। कल जो तीन चार घंटे तुम्हारे मना करने पर भी यहाँ मैं आया था, सो उससे मिलकर ही। उसी ने मुझे

सब घटनाएं सुनाई थीं जो मैंने जय को बताई।

"मैं उन्हें छुड़ाऊंगी।" कविता चीख उठी।

"और मैं, अब स्वयं आगे कार्यक्रम में परिवर्तन कर रहा हूँ कविता। तुम्हारी सलाह के मुताबिक किसी सैनीटोरियम में इलाज कराने जा रहा हूं। तैयारी पूरी हो चुकी है। मैं अब जीने की इच्छा से भर उठा हूं। एक बार नलिन को फाँसी के तख्ते से उतार कर लाऊँ, तेरे सामने खड़ा कर दूं तब तक जीने की तमन्ना जाग उठी है। बस कविता! बस, तुम भी मेरे साथ चलोगी न?"

"जरूर भैया जरूर जैसा और जिस तरफ तुम कहोगे करूंगी उसी वक्त फौरन!"

शम्शा अपने जीवन में जय को किस सीमा तक महत्व देती है यह बात उसे भी स्वयं पता नहीं थी सो बात नहीं। वह जानती थी कि जय उसके लिए बहुत कुछ है। उसे खो कुछ नहीं है। किन्तु यह भी सच था कि जिस जय को वह इतना महत्व देती थी वह एक ऐसा व्यक्ति था जो कभी गलत काम कर ही नहीं सकता। और अब......वह जय के सिद्धाँतों की गहराई समझने की कोशिश करे यह तो नितांत असंभव था। पहले लाड़-प्यार और फिर घृणा तथा अविश्वास के तंग दायरे में रहकर वह जो कुछ सीख पाई थी उसका साराँश यही था कि पुरुष वह है जो औरत की इज्जत करे, उसकी इज्जत को अपनी जान से अजीज समझे उसके लिए हर बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को तैयार रहे। रहे नहीं, दे और जय उस कुर्बानी में पीछे रह गया था। रनवीर ने उसके विचारों को कुरेद दिया।

यूं कहा जा सकता है कि वह जो विचारों की सेज पर पड़ी कलमें किनी सी अलसा रही थी, इसे झंझोड़ कर बैठा दिया। उसने रनवीर का नाम पहले सुना था ऐसी बात न थी। कई छोटे-मोटे डाकों और अन्य लूट-खसोट के मामलों से संबद्ध रनवीर की कुख्याति उस तक पहुँची

थी किंतु सबसे पहले उसके इस दृष्टिकोण से उसके बारे में न सोचा था एक खूनी, हत्यारा और इंसानी खून का प्यासा ही वह उसे समझती थी। वह किसी में पुरुषत्व की कल्पना यदि कर पायी थी तो जय में। रनवीर और जय का वार्तालाप उसने सुना था। जो कुछ जय ने उस समय और बाद में शम्शा से कहा उसके अनुसार वह उसे एक कभी पुरुष से अधिक न मानने पर विवश हो गई। उसकी जगह अब रनवीर आ विराजा और हजार मुसीबतों की मारी शम्शा की कश्ती का ना खुदा सा बन गया। वह उलझन में पड़ गई। जिस प्रकाश को इर्द-गिर्द देख वह अपने आपको रोशनी में अब तक समझ रही थी, वह तो अन्धेरा बन गया था और जिसे अब उसने प्रकाश समझा वह इतनी दूर था कि उसकी कल्पना से हृदय आलोकित था, अवश्य नयन सूने-सूने थे। वह दूर-दूर तक घिरे अन्धेरे में थी।

जयनाथ के पास लौटकर जाना उसे नारीत्व का अपमान लगता था और रनवीर के पास पहुंचे तो कैसे? वह कहाँ, कब मिले या इसकी कोई निश्चित सूचना उसके पास न थी न निकट भविष्य में होने की संभावना थी। वह एक ऐसा पक्षी बन गई थी, जो पर कैं थी नहीं और पिंजरे में भी नहीं, पर उड़ नहीं सकता।

विचारों के इन्हीं सागर में डूबते उतराते वह फिर अपनी हथेली में आ गई। (कोठे) पर बैठने लगी। तबले और साजों की ताल पर सब कुछ थिरकने लगा, बैरने लगा। रनवीर एक ऐसा किनारा था जिसके छोर को वह छू नहीं पाती और जय एक ऐसा मोती था, जो सीप से निकल गया। हलचल और तूफान में समन्दर की तलहटी में खो गया। फिर भी अपनी आभा बिखेरे जा रहा था। क्यों?

इसका उत्तर शम्शा के पास था।

साँझ अपना सम्मोहन राग गाती अंधियारे में दीए जलाती आती और शम्शा के कोठे पर जब झाँकती तो लगता कि वह श्रृंगार सज्जा में लीन तो है, परन्तु हृदय उसका खिन्न है।

रात बढ़ती जाती। आधी रात का समय घुंघरुओं की आवाज को दाद दे। चाहने वालों के दिल में बेहद खुशी के जाम उड़ेल, जब ढलते निशीथ में वह अपनी शय्या पर आ लेटती तो तन थकान के मारे चूर रहा होता और मन चिंतन के मारे बोझिल। प्रभाव दोनों का नयनों पर पड़ता।

पलकें बेचारी अपने अनमोल मोतियों को संभाले रखने का भरसक प्रयत्न करतीं, परन्तु शम्शा को अनेक दैनिक कार्यक्रमों के साथ ही यह सब कुछ भी अनिवार्य लगने लगता था। वह खोई-खोई सी आँखे बहाती रहती। घंटों बीत जाते और प्रातः होने में जबकि एक पहर शेष रहता, तो उसे सूर्यास्त प्रतीत होता। सूर्य की किरणें देखतीं कि उसके कपोल भीगे हैं। सेवक समझते कि मालकिन आलसी हैं जो ११ बजे तक नित्य सोती हैं।

कई बरस बीत गये। शम्शा का यौवन और उसका नशा चाहने वालों के हृदय में ढलता जा रहा था। महफिल का रंग उतरने के स्थान पर दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। ऐसे ही रंग में एक रात नाचते-नाचते शम्शा ने अनुभव किया कि अपने बेतोल इनाम और दाद से उसे माला-माल करने वाले, घनी दाढ़ी और मूछों के बीच छुपे दो ये हैं। उसके जाने पहचाने हैं। उसने यह भी अनुभव किया कि वे दोनों ही एक दूसरे की ओर प्रतिद्वन्द्वियों की नहीं किसी और नजर से देख रहे हैं। वह गाती रही और अपनी स्मरण-शक्ति को कुरेदतीं रही। उनमें से एक आदमी के सामने बैठ उसकी आँखे में आँखे डाल और अपनी मुस्कराहट और भावभंगिमा के आवरण में पैनी दृष्टि को प्रयोग में लाती अचानक संभल कर उठ खड़ी हुई। वह केवल पन्द्रह दिन पहले ही तो एक बहुत बड़े घराने की दावत में इन महोदय का परिचय उसे मिला था। नाम तो उसे याद नहीं आया पर यह ध्यान में आ गया। डी० एस० पी० को भरी महफ़िल में एक रहस्यमय व्यक्ति निगाह गड़ाये पैसा बहाते देख वह सकते में आ गई। निगाहों का सागर छल-

झाती वह उनके पास से गुजरती उस दूसरी रहस्यमयी छाया के पास पहुँच गई। उसके गले में बाँहें डालकर वह झूमकर गा उठी।

"अचानक आज फिर बीता जमाना याद आया है।
हमारी हसरतों का नूर बरसों बाद आया है।।"

बोल सुनकर नोट हाथ में लिए अचानक ही वह कंपकंपा गया और फिर अपनी कमजोरी छिपाने के लिए कह दिया—वाह ! वाह ! क्या खूब ! आगे कहिए।

और काफी बदली हुई आवाज के बावजूद भी शम्शा जयनाथ को पहचान गई। वह जान गई कि उसकी महफिल आज फिर आबाद हो गई है। संभल कर दूसरा बोल उठाया—

"यकीं है करने को, महफिल मेरी आबाद आया है।
मगर ताज्जुब कि पीछे पीछे ही क्यों सय्याद आया है।।"

और इतना कहते ही अक्नी देहलता फूल सी वह डी० एस० पी० के सामने बिखराकर बैठ गयी। वह गाती रही, डी० एस० पी० झूमता, इनाम देता रहा और जयनाथ शम्शा के शेर का मतलब समझने में लगा रहा। अचानक शम्शा के नये बोल से वह चौंक उठा—

"वो क्यों खामोश बैठे हैं चले जाते तो अच्छा था।
गये आशिक के पीछे क्यों मेरा जल्लाद आया है।"

उसने गौर से शम्शा की ओर फ़िर उस अपने प्रतिद्वन्द्वी को जिसके गले में हाथ डालने के लिए शम्ला मचल रही थी लेकिन वह जय की ओर ही नजर गड़ाये थी। उसे याद आ गया। एक क्षरण में ही सब कुछ जैसे साफ हो गया। किन्तु······

शम्शा गा रही थी—

"डरो मत ऐ दिल गुलरू, ये कारे हाथ में मेरे,
कि वो खुद कैद जो करने जिन्हें बरबाद आया है।"

जय को लगा जैसे शम्शा का स्वर उसके लिए कोई गुप्त सन्देश है।

वह उठा और चल दिवा। चलते-चलते उसने देखा कि उउते हुए डी० एस० पी० की कलाई पकड़ कर शम्शा गा रही थी।

"न जाओ छोड़ कर हमको कि कुछ तो रहम भी खाओ,

समां ये रात का करने अभी फरियाद आया है।"

वह कुछ ही देर में अपने आपको सुरक्षित स्थिति में कर सकने में समर्थ हो गया। उसके वहाँ से निकलने के पाँच मिनट बाद ही डी० एस० पी० भी वहीं से निकला और महफिल समाप्त हो गई। जय एक अन्धेरे कोने में खड़ा सबको देखता रहा। अचानक उसके हाथ की कलाई पर किसी का हाथ पकड़ा और घूमकर खड़ा हो गया। पकड़ की मजबूती से वह तिलमिलाने लगा। उसने अपने आपको छुड़ाना चाहा किन्तु असमर्थ रहा।

अपने द्वार की देहरी पर रोशनी करने पर शम्शा ने देखा कि जयों के हाथ को मजबूती से पकड़े कोई सड़क पर खड़ी कार की ओर लिए जा रहा हैं। उसकी चीख निकलने को हुई परन्तु वह संभल गई। इस अप्रत्याशित दुर्घटना ने बचने का कोई उपाय न था।

उसकी समस्त चेतना जैसे झटका खाकर जाग उठी। उसकी पलक, के नीचे की गहराई और उभर आई और शीघ्र ही वह सड़क पर थी। जय को लेकर जा रही कार के पीछे ही वह भी चलना चाह रही थी परन्तु यह असंभव था। जो संभव था वह उसने किया और यह था उस की गाड़ी का नम्बर, रंग और हुलिया नोट करना। इतना करने पर वह वापिस अपने कमरे में आ गई और धम्म से चारपाई पर गिर पड़ी।

बयालीस

"आ बेटे, आ देख वह चीज दूंगी।"

"नहीं लेऊंगा।"

"बड़ी मीठी है।"

"होने दो।"

"अच्छा ले यह बिल्ली का बच्चा ले ले।"

"लाओ! बच्चे ने कहा और दौड़कर पास गया। माँ ने उठाकर उसे हृदय से चिपका लिया और प्यार से थपथपाती कहने लगी इतना परेशान न किया कर विजय, मै मारूंगी।"

और माँ तो धमकी देकर रह गई लेकिन बेटे से न रहा गया। उस ने हलका सा चाँटा तुरन्त माँ के गाल पर लगाते हुए कहा—ऐसे मारूंगा इतने जोर से।

माँ को हंसी आ गई। पास से एक औरत ने यह देखा तो बोली यह अच्छी बात नहीं है बेटा, जानते हो तुम किसके बेटे हो ?

"कुमुद देवी का," बच्चे ने अभिमान से कहा और माँ की ओर देखकर हँस पड़ा।

प्रौढ़ा को और भी हंसी आ गई सिर्फ माँ का है, बाप का नहीं।

"हूं, पर वे तो गये।"

"कहां ?"

"बाहर।"

"कब आयेंगे ?"

"अभी पता नहीं।"

"कब पता चलेगा ?"

"जब उनकी चिट्ठी आयेगी ।"

"किसने बताया ?"

"माँ ने ।'

"अच्छा ! तब तो बड़ी अच्छी है तेरी माँ ।"

कुमुद की आँखें भर आयीं—"और क्या बताऊं इसे बहिन जी मुझ जैसी कौन होगी इस दुनिया में । यह पता भी नहीं मैं सुहागिन हूं या......"

प्रौढ़ा कुछ सत्य थी—"ऐसा न कहो बहिन ! जय कभी न कभी वापिस आयेगा । वह किसी मुसीबत में फंस गया है, जल्दी ही लौटेगा । खैर, तुमने आज की ताजा बात सुनी ?"

"क्या ?"

"चीन ने हमारे देश पर फिर हमला कर दिया ।"

"कब ?"

"२० अक्टूबर को । तैयारी और छुटपुट घटनायें तो पहले से हो रही थी, पूरी लड़ाई छिड़ गई है जाने देश का क्या हो ?"

"मैं क्या बताऊं बहिन जी तुम तो पढ़ी लिखी हो, इधर-उधर की बातों का ध्यान रखती हो । पर मैं ! मुझे तो इस विषय की चिंना सताए जा रही है । देखो क्या होगा ? इसी के सहरे दिन काट रही हूं ।"

"कहती तो ठीक हो तुम, लेकिन मैं जो कह रही हूं वह सारे देश के सहारे का बात है ।"

"वे होते तो कुछ करते बहिन जी, वे चूकने वाले नहीं थे । पर अब, भगवान इस देश की लाज खुद रखेगा !"

"देखो क्या होता हैं ?" प्रौढ़ा ने कहा और चली गई । कुमुद के हृदय में उथल-पुथल शुरू हो गई थी, सो जारी रही ।"

तेतालीस

जयनाथ ने अपने सामने बैठे नलिन, कविता और रनवीर की ओर बड़े गौर से देखा। यह सही है कि पिछले कई वर्षों से वह अनेक आपदाओं से ग्रस्त रहा था और आज भी पुलिस की दृष्टि से अपने को बचाता इधर-उधर फिर रहा था। उसके अपराधों की संख्या धीरे-धीरे इतनी बढ़ती जा रही थी कि उनका कोई हिसाब न था। आज जब उसने नलिन को अपने सामने बैठा देखा तो उसे सब कुछ सपना सा लगने लगा। कुमुद की दयनीय दृष्टि और सुहाग के रंगे हाथों का पीलापन उसके मस्तिष्क में कौंध गया। मन में भाव आने लगा कि सोनी की आत्महत्या के बाद किस हालत में उसे छोड़ कर वह चला था। कैसे वह गांव गया। एक हत्या की······कैसे भागा पुलिस ने पीछा किया और······एक के बाद एक कत्ल। डर का और······

जयनाथ की दृष्टि रनवीर की ओर उठ न सकी। वह दोनों हाथ में मुंह दाब बैठ गया। नलिन ने यह देखा तो कविता से कहा—"देख तो यह शर्म से पागल हुआ जा रहा है, इसे दिलासा दे न।"

कविता उठी और जय की ओर चली। जय की हिचकियां बंध गई। उठकर वह कविता के पैरों में लिपट गया।

कविता ने उसे उठाकर बैठाया कहने लगी—"मैं सब कुछ जानती हूँ जय। जिस काम को करने लिए रनवीर के कहने पर भी तुम तैयार न हुए वह तुमने किया अब भी कर रहे हो। पर उसका रनवीर के सामने बैठकर दुख क्यों ?"

जय चुप रहा। नलिन उठकर उसके पास आ गया। मुझे जीवित देखकर आश्चर्य कर रहे होगे। यह सब रनवीर की कृपा का फल है। और भी बहुत कुछ हुआ है, जिससे तुम्हें आश्चर्य होगा। पर तुम रोते हो? क्या तुम्हें कोई खास दुख है?

जय अब भी चुप रहा तो नलिन ने ही फिर कहा—"उठो अब धीरज धरो, मैं जानता हूँ पुलिस तुम्हारे पीछे है। सैकड़ों कत्लों में तुम्हारा नाम है। पिछले ३-४ साल में एक दिन में कई-कई कत्ल तुमने किए हैं फिर भी यह बात इतनी आश्चर्यजनक नहीं जितनी तुम समझते हो। आश्चर्यजनक बात सुनना चाहते हो तो सुनो। जिस रनवीर के कहने को न मानकर तुमने अपनी मर्जी से कत्ल किए वह आज तुम्हारे देश की संसद का सदस्य है कविता असेंबली की मेम्बर है और मैं⋯ ⋯"

अब जय ने आँख उठाकर नलिन की ओर देखा जैसे पूछ रहा हो कहो तुम भी निकम्मे हो?

नलिन ने कहा—मैं कुछ ही दिन हुए एक अभियोग से मुक्त होकर आया हूँ और आजकल अपनी पत्नी कविता के साथ बड़े आराम से दिन बिता रहा हूँ।

जय फिर भी कुछ बोला नहीं तो रनवीर डरकर खड़ा हो गया—तुम चुप नहीं बैठ सकते जयनाथ! तुम्हारे अहिंसावाद और सामाजिक क्रांति के विचार मर चुके हैं। तुम्हारे हाथ में हथकड़ियों की छायाय तैरती हैं और अंगुलियाँ इन्सानी खून से तर हैं। कविता और शम्शा की बेइज्जती और बेपर्दगी से जिस जय का खून नहीं खौल पाया था, रनवीर के खूनी हाथों से हाथ मिलाने को जिस जय ने इंकार कर दिया था वह आखिर खून खराबी के रास्ते पर चल पड़ा है। फिर चुप क्यों हो?

जिय अब भी चुप था। रनवीर ने फिर कहना शुरू किया—"चुप होकर बैठ मत जाओ जयनाथ, मेरी बात को ध्यान से सुनो, उस पर

गौर करो और जो मैं पुछूं उसका जवाब दो। लेकिन उससे पहले एक बात मेरे मुंह से सुन लो और वह यह कि तुमने जो कुछ किया, वह मेरे लिए खुशी की बात है। मैं उस रास्ते पर चलने के लिए तुम्हें बधाई देता हूं। इसीलिए उन जालिमों के हाथ से बचाकर में तुम्हें लागा भी हूं।

अब जय ने सिर उठाकर कहा—"पूछो ! जो तुम्हें पूछना है, पूछो लेकिन एक बात मेरी भी सुन लो। सैकड़ों हत्यायें करने के बाद भी जयनाथ अभी तुम्हारी हाँ में हां नहीं मिलायेगा। वह खूनी हैं पर किसी खूनी की वकालत नहीं करेगा। डाकू है लेकिन डाकेजनी के पैसे को सही नहीं बतायेगा। वह अब भी वही कहेगा।

रनवीर पर जैसे बज्रपात हुआ। आखिर इसका मतलब क्या है। लेकिन फिर भी उसने कहा—"मेरा रास्ता ठीक नहीं है।"

"नहीं !"

"मैं ठीक नहीं कह रहा।"

"नहीं।"

"तुमने जो किया वह ठीक था।"

"नहीं।"

"तब फिर क्यों किया ?

"जरूरी था।"

'कमाल है जो ठीक नहीं, वह जरूरी भी हो सकता है वह तुमने ही कहा न।"

"मुझसे ही नहीं रनवीर अगर कोशिश करो तो हर मजबूर आदमी से तुम यह सिद्धांत सुन सकते हो। बशर्ते कि उनकी हिमायत करने के साथ ही साथ उनकी हालत के कारणों की खोजबीन की जाये।"

"मैं जिनकी हिमायत करता हूं उनकी हालत नहीं जानता किसने बनाई यह नहीं उनसे वाकिफ नहीं। तुम कहना यह चाहते हो कि मैं गलत रास्ते पर ही नहीं चल रहा बेवकूफ़ भी हूं और तुम ! किसी

रास्ते पर भी मजबूती से न चलने वाले, तुम शायद अपन आपको समझदारों में गिनना चाहते हो यही न।"

"उसे उत्तेजित न करो रनवीर। यहां आते ही मेरे सामने जो तर्क और जो परिस्थितियाँ उत्पन्न की गयीं उनको देखते हुए ही मैंने यह कहा है आप क्रोध न करें उस पर विचार-विमर्श करे। मैं तैयार हूं। रही बात मेरे किसी भी मार्ग पर न चलने की सो यह आप को हक है आप जो चाहें करें।"

"चाहने न चाहने की जो बात तुमने तो की ही नही तुम तो मुझे अन्धा कर रहे हो!'

कविता बीच में बोल पड़ी—"क्या तुम लोग सिद्धान्तों की बात ही हमेशा करोगे। कितने दिन बाद तो यह मुझे मिला है तुम दो मिनट हाल तो पूछ लेने दो। क्या से क्या हालत उसकी हो गई है जरा देखो तो समझने दो और महसूस न करो तो यह बातें हमें तनिक एकाँत में कर लेने दो।"

"लेकिन......"

रनवीर जो कहना चहना था उसे बीच में ही कविता ने रोक दिया—"बहस न करो भैया! करोगे तो चाहे वक्त कितना भी लगे लेकिन यह जरूर है किसी फैसले पर नही पहुंचोगे, क्योंकि कम कोई नहीं।"

रनवीर हंसता-हंसता कह गया—"अच्छी बात है कविता! फिर सही। लेकिन जयनाथ मुझे तुमसे कुछ जरूरी बात करनी है यह ध्यान रखना।"

एकान्त में अब जय और कविता ने एक दूसरे की ओर देखा तो कोई भी कुछ न कह सका। काफी देर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे। अन्त में जय ने अपनी बातें शुरू की मुझे इस पेशे में पड़ा देख, सुनकर आपको दुख हुआ था या सुख।

"दोनो।",

"वह क्यों ?"

"दुख इसलिए कि जयनाथ अपने सिद्धांत को मजबूती से पकड़ न सका। सुख इसलिए मेरा जय इसान निकला। किसी की इज्जत और शराफत को लडने वाले दरिन्दों के लिए मौत का पैगाम और हर कसकते घाव का मरहम बन गया।

"फि······"

जय कुछ कहना चाह रहा था कि कविता ने टोक दिया—"फिर··· फिर कुछ नहीं जय, यह तो बात थी तुम्हारे बारे में सुख दुख की लेकिन अगर तुम्हारे मेरे सम्बन्धों का प्रश्न पैदा हो तो तुम मेरे वही देवर हो।"

इसके बाद कविता और जय घण्टों तक पास बैठे बातें करते रहे। उन्हें एक दूसरे से शिकवा तथा शिकायत थी तो केवल एक दूसरे के प्रति थी सदभावना। सहानुभूति ! अपने में खोये खोये से न जाने किन वचारों में लीन क्या क्या सोचते रहे।

चवालीस

रनवीर और जयनाथ एक दूसरे से बातें करने आते इससे पूर्व ही एक अनहोनी ने इन दोनों को आश्चर्यान्वित कर दिया। समाचार पत्र में एक समाचार छपा था।

"श्रीमती कुमुद जयनाथ द्वारा ५०००) रक्षा कोष में।

सब जमा पूँजी देश रक्षा में।"

नीचे दिए हुए समाचार को देखा। उसे पढ़कर जयनाथ फौरन

रनवीर के पास पहुंचा और जल्दी में समाचार पत्र उसके सामने रखता हुआ बोला—"गोपाल ! मैं जल्दी से जल्दी इससे मिलना चाहता हूं।"

"क्यों ?"

"दिल कर रहा है।"

"आज तक नहीं करता था ?"

"करता था पर मैं नहीं जाता था।"

"अब क्या हुआ ?"

मुझे अपने अपराध बहुत बड़े लग रहे हैं और उससे उनकी क्षमा माँगने को जी चाह रहा है।

"लेकिन पुलिस के होते तुम यह नहीं कर सकते।"

"फिर तुम किस काम आओगे ?"

इस पर रनवीर चुप हो गया और कुछ देर रुककर बोला—"अच्छा यह हो जायेगा, लेकिन कुछ देर के लिए मेरे साथ चलोगे तुम ?"

"कहाँ ?"

"मेरे स्थान पर।"

"चलो।"

कमरे में पहुच कर रनवीर ने जय के सामने बैठकर कहा—"आज मैं तुम्हें पूरी तरह से और तुम मुझे पूरी तरह समझ लो।"

जय चुप रहा।

रनवीर ने फिर कहा—"आज जो हमारी सरहदों पर हुआ है उस ने मेरे विचार, इरादे और सब कुछ झंझोड़ कर रख दिए हैं, मैंने बहुत सोचा है सोचकर कुछ निश्चय किया है और अब तुम्हारी सहायतासे उसे कार्यान्वित करना चाहता हूं। क्योंकि बाकी किसी से मुझे और कुछ नहीं कहना।

"कहो।"

"कुमुद के इस त्याग ने केवल तुम्हें ही नहीं झकझोरा।" मेरा भी अन्तर्मन घायल कर दिया है। मैं सब शंकाओं से उठ अब किसी

निश्चय पर पहुंच गया हूं।"

फिर कुछ कहकर उसने कहना शुरू कर दिया—"तुम जानते हो मैं आरम्भ से ही शान्त प्रिय हूं। शांत और समझौते के इन सिद्धांतों में मेरा विश्वास कुछ जम नहीं पाया है। इसीलिए मैं इस मार्ग पर चला, जिस पर हूं। लेकिन मैं राठौर हूं यह प्रत्थसन मुझे कुछ दिनों से एक अजीब ढंग से हुआ है। देश के संकट और इस स्थिति को देख अपनी सेनाओं की पराजय पर मैं खीज उठा हूं। युद्ध और विभीषिका मैंने अपने देश के इतिहास में पढ़ी है लेकिन यह स्थिति······।

इसके अतिरिक्त कुछ समय भी मेरे लिए अनुकूल नहीं रहा। ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है कि जल्दी ही वेश बदल नहीं दिया तो गोपाल और रनवीर को अलग-अलग आदमी अब अधिक समय नहीं रह सकते। उन्हें सामने आना होगा और अगर यह बात माँ के सम्मुख आई तो······

"फिर क्या चाहते हो तुम।" जय ने पूछा।

"मैंने···मैंने सेना में भरती होने का निर्णय कर लिया है। जय! लेकिन यदि तुम मुझे सहयोग दो तो मैं अपने निर्णय को कार्यान्वित करने से पहले तुम्हारे ऊपर कुछ जिम्मेदारी डालना चाहता हूँ।"

"जिम्मेवार तो संभाल ली जायेगी, लेकिन यह सेना में भरती होने का तुम्हारा निर्णय शीघ्रता में किया गया है, उचित नहीं है।"

"नहीं जयनाथ, पहले जो मैं कहता हू, सुनो, तब तक चुप रहो।"

रनवीर की बात सुनकर जयनाथ को लगा जैसे वह कुछ बहका हुआ है। देश और समाज से भ्रष्टाचार को हिंसा मार्ग से समाप्त करने वाला रनवीर अपने पथ को छोड़े, वह अपने क्षुद्र मस्तिष्क में खपा न सका। वह तो यह समझता था कि दुनिया में शेष तो सब कुछ बदलना संभव है लेकिन रनवीर बदल जाए यह संभव नहीं। जिस धातु में परिवर्तन की गुंजायश ही बिल्कुल नहीं होती, वह रनवीर को

नही समझता। फिर कल की बात ! कितना उग्र था वह।

'सुनो जय ! शम्शा के कोठे से तुम्हें पुलिस के हाथ से बचाकर मैं इसीलिए लाया हूं कि तुम और मैं दोनों जानते हैं कि सार्वजनिक जीवन अब तुम्हारे लिए इस रूप में संभव नहीं। तुमने जितने अपराध पुलिस की दृष्टि में किये हैं उनके आधार पर किसी भी समय गिरफ्तार किये जा सकते हो और फिर...।"

'लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि मै स्पष्ट रूप से तुम्हारे साथ निरन्तर हत्या और अपराध के मार्ग पर आ जाऊं। यह दस्युवृत्ति अपना लूं और सदा-सदा के लिए मैं खोया जाऊं। मैंने एक हत्या की है। निश्चित रूप से की है, उसे मैं मानता हूं, लेकिन उसकी परिस्थितियाँ...मैं मजबूर था। रही बात शेष हत्याओं की, वह सब बिल्कुल गलत है। मैंने और कोई अपराध कभी नहीं किया।"

रनवीर हँसता हुआ बोला–'मालूम होता है जैसे पुलिस वालों ने आरोप लगाकर तुम्हारे किसी पर भी विश्वास करने की आदत छुड़ा दी है। अरे भले आदमी पूरी बात तो सुनो पहले। मैं तुम्हें हत्या के मार्ग पर लाना चाहता था जरूर, लेकिन अपने साथ। अब जब मैं उस रास्ते से स्वय अलग हो रहा हूं तो यह कैसे संभव है कि तुम्हें इस रास्ते से भटका दूँ।"

"तो फिर ?"

"मैंने जब हालात देखे और उन पर सोचा तो एक नई विचार धारा मेरे मस्तिष्क में आई। मैंने नलिन और अपने अन्य साथियों का एक सम्मेलन करके विचार विनिमय किया। सोचा कि जो भारत की सेनायें अपने यश और गौरव की गाथायें धरती के कदम-कदम पर लिखती रहीं, वे इस प्रकार अपमानित, पराजित और अनाहत हों, कैसी विडम्बना है। जिस हिमालय का गौरव गीत गाते, कविकुल कभी थका नहीं, वह विदेशियों से पदाक्रांत हो, पराभूत हो, और...।

"तुम बताओ जय ! क्या ऐसे समय में जब देश की शांतिहीनता, अपोसर्णता और असावधानी की चर्चा विश्व के कोने में हो रही है, माओ और चाऊ अपनी वीरता की शेखियाँ मारते हमारे सैनिकों का निर्दय संहार कर रहे हैं, मैं अपने को सामाजिक क्राँति का भूत कहकर कम्युष्टिों की तरह संतोष करता रहूं ।"

जय सुनता रहा । खड़े खड़े बड़े ध्यान से, एकाग्र भाव से ।

रनवीर कुछ रुककर बोला—"जयनाथ राजस्थान के गीत महाराष्ट्र की प्रबंग कविता और बुन्देलखंडी घाटों की हुंकार कहाँ खो गई । जानते हो, तुम्हें याद होगा दलाईलामा के ऊपर तुम्हारा कम्युनिस्ट पार्टी से बिबाद हुआ था । तुम्हारे वे विचार भविष्य की बात आज सत्य सिद्ध हुई । कम्युनिष्ट की पशु प्रवृत्ति रंग लाई ।

जयनाथ ने कहा—'मैं अब कम्युनिष्ट नहीं यह सहीं है लेकिन··· ।'

रनवीर ने उसे बीच में रोक दिया-"तो क्या, तुम उनकी हिमायत का विचार रखते हो ?"

"नहीं, मैं तो यह कह रहा था कि मैं कभी कम्युष्ट था लेकिन भाग्य देखिए कि उस पार्टी को छोड़ दिया और कातिल और हत्यारा बना ।"

"तो क्या इसका गम है ?"

"बिल्कुल नहीं ! मैं कुछ भी कहलाया लेकिन, देशद्रोही कहलाने से बच गया ।"

"यही तो मैं कह रहा था, लेकिन तुम्हारे विचार भारतीय सेनाओं की इस पराजय का कारण क्या है, बता सकते हो ?"

यह तो स्पष्ट बात है । हमारे इतिहास में कहा गया है, बताया गया है कि हमारी सेनायें जब भी हारीं, सेनापतियों की लापरवाही या उनके शत्रु-शक्ति के गलत अनुमान से । आज भी यही हुआ है मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि यह हमारी सेनाओं की हा

नहीं। अराष्ट्रवादी तत्वों की विजय है। यह उन अहिंसक और निरस्त प्रगतिवादियों की पराजय है जो महात्मा गांधी के नाम हर कुर्सी कब्जाये बैठे हैं और समझते हैं कि हम संसार के सब से बड़े राजनीतिज्ञ हैं। यह उनकी पररस्ष्ट्र नीतियों की असफलता है।''

''और रक्षा मंत्री···।'' रनवीर कुछ कह रहा था कि जयनाथ ने बीच में ही उसे रोक दिया—'तुम समझते नहीं रनवीर, कश्मीर के मामले पर सुरक्षा परिषद में जो अच्छा बोल सकता है, वह रक्षामंत्री हो सकता है, वह सोचना एक बहुत बड़ी भूल थी, जो अब सामने आयी।'' जरा सोचो तो सही कि सिपाही और उसकी जिन्दगी का ज्ञान नहीं, कांग्रेस में रहकर जो साम्यवाद और कम्युनिस्टों के नाम पर निर्वाचन में जोतता हो, उसके हाथ में हमारी सेनाओं की कमान। अच्छा होता रक्षा मंत्री सैनिक मामलों का जानकार होता।

जय ने अपनी बात कहकर रनवीर की ओर देखा तो वह प्रसन्नता से जय से लिपट गया—''तुम मेरे स्वप्नों के आदर्श पुरुष हो जय। मैं तुम्हारी बात से सहमत हूं, अब मेरी भी सुनो।'' और फिर आहिस्ते आहिस्ते कहने लगा—

''मैं जानता हूं कि आज हमारी सेनायें विवश हैं, उनके हाथ बंधे हैं। उनकी हालत उस आदमी जैसी है जो रथ टूटने पर रणक्षेत्र में पड़ा है और निशस्त्र अर्जुन के हाथों मरने पर विवश है। फिर तुम्हीं सेना में जाकर क्या करोगे?''

'मैं सेना में सिर्फ इसलिए नहीं जा रहा कि देश और उसकी धरती के लिए लड़ूं। मैं जा रहा हूं सैनिकों में आत्म बल जगाने। मैं भर्ती हो कर ही सेना के जवानों में क्रांति और विजय का दुन्दुभी फूँकना चाहता हूं।''

''और मैं······''

''तुम अदालत में उपस्थित होकर अपने आपको न्याय के लिए प्रस्तुत कर दो। नलिन तुम्हारे छुड़ाकर लाने की सब सामग्री जुटा

चुका है।"

"कैसे ?"

"मुकदमा लड़के।"

"लेकिन······"

"मैं सब पता लगा चुका हूं। जान चुका हूं कि तुम्हारी हालत क्या है ?"

"मान लिया, लेकिन············।"

"मैं इस स्थान को संभालने में असमर्थ हूं। यह तुम्हें बता चुका हूं यह भी कह चुका हूं क्या करूंगा। तुम्हारे लिये यही काम है कि मेरी इस सम्पत्ति और यह कार्यभार संभालो।"

सचिन उस काम को करता रहेगा जो अब तक मैं करता रहा हूं। रनवीर की हैसियत से। तुम्हें वे काम संभालने हैं जो गोपाल राठौर करता है। बोलो तैयार हो ?

जय कुछ झिझका। सोचने की मुद्रा में बैठ गया। रनवीर ने उस के कन्धे पर हाथ रखा—"चलो, सोच लेना। अभी कल तुम कुमुद से मिल आओ और इसके बाद शम्शा से मिल लेना। में स्वयं प्रबन्ध कर दूंगा।" कुमुद को समझा देना। तुम्हारा जीवन खतरे में उतना नहीं जितना वह समझती है. बस !

जय हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ—"तुम भी एक जादूगर हो। रनवीर।

पैंतालीस

कुमुद सालों बाद जयनाथ को पाकर भी एक बार यह शिकायत न कर सकी कि उसे कोई तकलीफ हुई है। उसने भी कोई मुसीबत झेली

। है वह तो जैसे उल्टे उसकी कृतज्ञ हो गई कि वह लौट आया। बहुत प्यार दुलार की बातें उसने कीं और जय को अपनी पलकों में ही रात भर बिठाये उसके दुख दर्द की छोटी से छोटी बात पूछी और उस पर विचार एवं चिन्तन किया। लेकिन अपने आपको दुखी या परेशान जाहिर न किया।

"तुम बहुत दुखी रहीं कुमुद ?" जय बोला।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी याद में वह सुख मिलता था कि दुख पास आ ही नहीं सका।"

"मेरे न आने पर नफरत नहीं हुई मुझसे ?"

"नहीं बल्कि बार बार दिल गर्व से फूल उठता है।"

उस रात ही वे दोनों साथ-साथ गोपाल के पास रवाना हो गये। कुमुद ने उस पर तनिक भी ऐतराज न किया। जय ने उसे, जैसा रनवीर ने कहा था समझा दिया था।

गाड़ी में बैठते ही कुमुद एकान्त देख जय की गोद में सिर रख सो गई। जय सावधान था, वह जागता रहा। एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो एक बुर्कापोश महिला को अकेली डिब्बे में चढ़ते देख वह दूसरी ओर मुंह करके बैठ गया। महिला ने कब बुर्का उतारा, कब उसके पास आ बैठी, यह उसे पता न चला वह तो केवल यह जान पाया कि उसके कन्धे पर किसी ने हाथ रखा और वह मुड़कर पीछे की ओर देखने लगा सामने शम्शा खड़ी थी।

जय जिसके शरीर में भय का आतंक सा छा गया था, रोमाँचित हो उठा, हँसकर कहा—'क्या देख रही हो शम्शा ?'

"कुछ नहीं।" बस यही कि तुम ठीक हो। अपनी बीवी के पास हो।"

जय हंस पड़ा—"यह नहीं देख रहीं कि तुम भी पास ही खड़ी हो!"

"यह तो अभी देखूंगी। बैठ जाऊं क्या आपके पास?"

"नहीं।"

"तुम्हारे नहीं कहने से क्या रुकूंगी?"

"तो फिर बैठ जाओ!"

जय की ओर देखती शम्शा ने कहा—"मेरी नजरों में तुम इतने चढ़ गये हो कि अब तुम्हारे सामने बैठते शर्म आती है।"

"क्यों?"

"तुम सातवें आसमान पर जो हो।"

"बदनामी के।"

"हाँ, लेकिन मेरी नजरों में नहीं, पुलिस की।"

"और तुम्हारी!"

"और मेरी नजरों में तुम बदनामी के सातवें आसमान से परे हो। जो आदमी एक औरत के लिए जान खतरे में डाले और उसकी बेइज्जती को बचा ले वह कितना बड़ा शमशा की नजरों में है, यह मत पूछो जय।"

"तो तुम सब कुछ जान गयी हो।"

"हां!"

"फिर..."

"तुम्हें बचाने की कोशिश की, लेकिन यह देखकर दंग रह गई कि आसमान का गिरा खजूर पर अटक गया है।"

जय हँसने लगा—"मगर गलत फहमी।"

"सरासर गलत फहमी। क्योंकि अब मुझे पता चल गया है कि वह खजूर कौन सी थी?"

"कौन सी?"

"जिसने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।"

इसी वक्त अचानक जय का बच्चा जागकर रोने लगा। कुमुद भी आँखें मलती उठ बैठी और शम्शा को देख उससे लिपट गई। दोनों में घण्टों तक आपसी बात हुई। जय का जैसे दोनों को ध्यान ही नहीं रहा।

आखिर कुमुद ने कहा—"यह कहते हैं कि मैं अपने आपको पुलिस के हवाले कर दूंगा।"

"क्यों ?"

"अपने आपको बेगुनाह साबित करने के लिये।"

"दिमाग खराब है। कत्ल के केस में फाँसी की सजा मिलती है। मैं ऐसा हरगिज नहीं होने दूंगी।"

"क्यों ?" जय ने बीच में ही कहा।

"मर्जी हमारी ! हम नहीं चाहते कि नदी में डूबते को जो तिनका मिला है उसे छोड़ दे।"

"लेकिन जिसे तुम सहारा समझ रही हो वह केवल तुम्हारे दिल का वहम है।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि जो आदमी पुलिस की नजरों से खुद भागता रहा है। जिसे अपनी जान बचाने के लिये दूसरों के सहारे की जरूरत है वह किसी का सहारा क्या बनेगा ?"

"पुलिस से अब तक भी तो तुम बचते रहे हो। ऐसे ही आगे भी बचोगे।"

"होश में हो शम्शा तुम ! जो कह रही हो उस पर जरा सोचा तो पता चलेगा कि यह काम कितना मुश्किल है। मैंने अब तक अपने आप को पुलिस की नजरों से बचाया जरूर है, लेकिन उसके लिए कितनी मुसीबतें सही हैं, क्या आफतें भुगती हैं यह जानने की जरूरत समझे बिना तुम यह बात कर रही हो ?"

"मैं सब समझती हूं जय। लेकिन मेरी यह राय है कि तुम ऐसा कर नहीं सकते। अगर मेरी भी तुम्हारी निगाहों में कोई कीमत है तो यह बात तुम्हें मेरी माननी ही होगी।"

"मैं तुम्हारा अपने ऊपर बहुत हक समझता हूं और मानता हूं कि तुम मेरे जीवन में एक विशेष स्थान रखती हो। पर इस सबके होते हुए भी मैंने जो निश्चय किया है वह प्रण पूरा होगा ही।"

"देख रही हो जीजी तुम। अपनी जिद पर अड़े हुए हैं ये। इतने दिन तक मुझे थोड़े इधर उधर भागते फिरे। मेरी कोई बात नहीं मानी लेकिन अब? मेरे सुहाग से खेलने की ही इनकी इच्छा हो गई है। कुमुद की आँखें भर आयीं।

शम्शा जय के निश्चय को सुनकर चुप हो गई। जैसे किसी निष्कर्ष पर पहुंच गई हो। अब कुमुद की आँखों में पानी देखा तो उबल पड़ी—"मैं कुछ नहीं कर सकती कुमुद बहिन। मेरा इन पर हक ही क्या है? और कहां ये और कहाँ मैं? हूं तो आखिर कोठे की सील ही। मेरी बात अपने मन बहलाव के लिए कोई मान ले तो मान ले वरना किसी को क्या गरज पड़ी है? तुम जाओ और यह जायें! मुझे तो कविता बहन ने गाड़ी में बिठाकर कहा था कि जय गाड़ी में मिलेगा। मुझे क्या पता था कि इनके भी इरादे हैं············अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगी।"

और वह उठकर खड़ी हो गई। जय चुप बैठा रहा। दोनों को दस पाँच आँसू बहा लेने देकर, मन का भार हल्का कर लेने देना ठीक ही समझा।

गाड़ी की रफ्तार भी कम हो गई थी। दो-तीन मिनट बाद ही एक झटके के साथ खड़ी हो गई। शम्शा ने एक बार जय की ओर देखा और उतरने के लिए वह बढ़ी कि जय ने हाथ थाम लिया। हँसकर बोला—"हाथ पकड़ लिया है छुड़ाकर जा सकती हो तो जाओ।"

"छोड़ो............" शम्शा का क्रोध कम होने पर भी शेष था।

"नहीं शम्शा तुम दोनों अभी पास बठी हो बैठी रहो। जो मैं कहता हूं उसे सुन लो। विचारो, फिर भी अगर तुम यह कहोगी तो...... तुम्हारी मर्जी। मैं मानने के लिए मजबूर होऊंगा। लेकिन एक बात कहकर तुमने मेरी आदमीयत के ऊपर तमाचा मार दिया है। मैं नहीं समझता था कि तुम ऐसा कह सकती हो? तुम चाहतीं तो..."

शमशा ने समझ लिया कि जय अब क्या कहेगा। मुंह पर हाथ रख दिया उसने उसके। हँसकर बोली—"तो मैं माफी मांग लू तो..." और वह दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

जय ने कहा–"यह बात नहीं शम्शा! तुम नहीं मानती तो बैठो।"

शम्शा बैठ गई तो जय ने कहना शुरू किया—'कुमुद को याद होगा इसके सुख स्वप्नों की अघूरी तस्वीर को छोड़कर मैं अपने गाँव गया था। क्योंकि यह मैं इसे बता गया था। अखबार उसके हाथ में दे कर। यह जानती है किसने मेरे जीवन प्रभात की स्वर्ण किरण की। उसको मैंने कोई सुख नहीं दिया। सच है, पर उसके लिए दुख बहुत है।

उसकी आत्महत्या की खबर को जब पढ़ तो मेरी धमनियां खौल उठी थीं। मैं गाँव पहुंचा। पुलिस सावधान थी, क्योंकि मैंने देखा गाँव में पुलिस मैन थे, मैं सतर्कता से रहा। अपने शिकार का पता लगाया और समय पाकर गंडासे से उसकी हत्या की। मेरे सिर पर एक भार सा था उसे मारकर वह जैसे उतर गया।

जब मैं उसके कमरे में घुसा वह सोया हुआ था। मैंने एक झटका दिया और वह उठ बैठा। यह वही सज्जन था जिसने एक बार अनैतिकता के अपराध लगाकर गाँव के लोगों के साथ मेरी बहुत पिटाई की थी। मुझे देखते ही उसके हाथों के तोते उड़ गये। मेरे पाँवों पर गिर

पड़ा वह। गिड़गिड़ाकर माफी मांगने लगा और रोने लगा। लेकिन मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। एक करारा वार किया कि और वह वहीं खून से लथपथ वहीं गिर पड़ा। मैंने इधर-उधर देखा। गिरते समय उसकी हल्की चीख निकली। उसे सुनकर एक दो आदमी दरवाजे की ओर आ रहे थे। मैंने तेजी से दरवाजा बन्द किया। मकान के पिछवाड़े की ओर एक खिड़की थी, उससे कूद बाहर आ गया और··· और रात भर भागते प्रात: होने पर मैं जहाँ था वह जगह हमारे गांव से बीस मील थी। मैं सुरक्षित था।

बाद में अखबारों में पड़ा कि पुलिस ने मेरे ही नाम उसकी हत्या का जुर्म गढ़ा है। मेरे बारे में कुछ आदमियों ने गवाही दी है कि मैंने ही उसे मारा है, उन्होंने मुझे देखा भी बताते हैं। खैर, इसके बाद मैंने निश्चय किया कि मैं कुमुद के पास नहीं जाऊंगा। ऐसा करने पर इस का जीवन भी मेरे साथ-साथ एक बड़े खतरे में पड़ता जो मैं नहीं चाहता था।

मैं इस बीच एक गाँव में जाकर रहने लगा। वहाँ पर हर तरह की मेहनत मजदूरी की, परिश्रम किया, किंतु एक पूर्व परिचित चेहरे को मुझ पर शक हुआ और मै वहाँ से भी भागा। इसी तरह कई जगह से भागा। आखिर तुम्हारे पास जाना चाहा। पहुंच भी गया लेकिन जैसा कि तुमने देखा पुलिस वहां भी मेरे साथ थी। मेरी ही हरकत पर निगाह रहती थी और मुझे पकड़ ही लेती······

जय बोलता-बोलता रुक गया। कुछ सोचने के बाद बोला—"पत्नी थी, बच्चा था। मैं उनके लिये तडपता रहा। मिल न सका। अब तुम बताओ शम्शा, इस हालत में जिंदा रहना कोई जिंदगी है। मैं यह नहीं चाहता कि मैं जिंदा रहूं और पत्नी भूखी बैठी रहे या रात दिन मेहनत करे, दो रोटियों के लिए सुबह से शाम तक हाथ पांव तुड़ाये और······ मै······मै अपनी जान के लिए भी दर-दर रक्षा और मदद की भीख

मांगता फिरूं ? यही तरीका है जिससे जिया जाता है, तो मैं जियूंगा। लेकिन सच बता शमशा इससे तुम दोनों को क्या फायदा है ? किसी दिन तो पुलिस पकड़ ही लेगी। फिर क्या होगा ?

अब शम्शा के बोलने की बारी थी। वह चाहती थी जय पुलिस के हाथ न पड़े लेकिन जो जय ने कहा था वह ठीक था। इस प्रकार का जीवन तो निष्प्रयोजन ही है। उसने कहा—'तब फिर बीबी बच्चों को अनाथ ही करना चाहते हो ?''

जय कुछ उत्तर देना ही चाहता था कि कुमुद बोल पड़ी—''मैं कुछ सुनना नहीं चाहती। मुसीबत है तो मुझे है। मैं पत्थर तोड़ूं या और कुछ काम करूं तुम्हें यह काम नहीं करने दूंगी। अगर करोगे तो देखो, यह मेरी सुहाग चूड़ियां हैं, इन्हें पहले तोड़ना होगा। इस बच्चे को ······होगा कि इसका बाप······आगे वह कुछ न कह सकी।

उस दिन चर्चा वहीं खत्म हो गई। इसके बाद किसी के कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं थी।

कुछ ही देर बाद गाड़ी रुकी और कविता डिब्बे में आकर बोली—''इसी स्टेशन पर उतरना है जल्दी करो।''

छयालीस

गोपाल राठौर दिल्ली आया हुआ था। पार्लियामैंट का सत्र चल रहा था। पहले रक्षामंत्री को त्यागपत्र दिए हुए बहुत दिन हो गये थे और उपरक्षा मंत्री उक्त पद पर काम कर रहे थे। राठौर पार्लियामैंट जाता और शेष समय अपने मित्रों, परिचितों तथा भेंटकर्ताओं के साथ

बिताता। एक दिन सन्ध्या समय मद्रास होटल से निकलते समय एक साथ दो पूर्ण मित्र मिल गये। एक कम्युनिस्ट थे और दूसरे प्रोफेसर। तपाक से दोनों मिले। राठौर दोनों को लेकर कनाट प्लेस में आ गया। प्रोफेसर ने आग्रह किया कि चलकर कहीं चाय पी जाए। गोपाल ने आनाकानी की तो कम्युनिस्ट फौरन बोले—"चलो भी यार! कुछ वार्ता भी हो जायगी और साथ-साथ ही चाय। आखिर नुकसान ही क्या है?"

तीनों जब टेबल पर जम गए तो प्रोफेसन ने हंसते हुए कहा—"राजनीति के खिलाड़ियों के दांव पेच देखने के लिए कुछ बातचीत मैं शुरू कर सकता हूं।"

"कीजिये।" गोपाल ने कहा।

प्रोफेसर बोले—'देश की वर्तमान स्थिति से क्या आप लोग संतुष्ट हैं।? चीन का भारत पर आक्रमण और इसके बाद जो कुछ हुआ इसके लिए आप किसे जिम्मेदार समझते हैं?"

गोपाल राठौर फौरन उठा—"एक बात कहना आप भूल गए प्रोफेसर नरेश और वह यह कि इस संघर्ष में देशद्रोहियों का अवश्य हाथ रहा।

कम्युनिस्ट बोले—'इन बातों का इस आक्रमण से संबंध। मैं यह बात नहीं मानता कि जितना प्रचार किया जा रहा है इतना बड़ा कुछ हुआ भी है। यह तो मामूली सीमा विवाद है जिसे तूल देकर राईका पहा खड़ा किया गया है। बढ़ती हुई कम्युनिस्ट शक्ति को कुचलने के लिए किया जा रहा है। केरल में कम्युनिस्ट सरकार बनी, तब भी इसी प्रकार की यह व्यर्थ और बदनामी की शोहरतें घड़ उसे कुचला गया था।

"भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का जहां तक सवाल है वह चाहे इस विषय पर अन्दरूनी तौर पर कुछ भी सोचती हो। राष्ट्रीय हित और

सुरक्षा की दृष्टि से प्रस्ताव पास कर चीन को आक्रान्ता स्वीकार कर चुकी है।"

गोपाल मुस्कराते हुए कह उठा—"रहने दो अन्तनाथम बतन की कलई न उतरवाओ। मैं सब समझता हूं कि क्या तुम हो और क्या तुम्हारी पार्टी के प्रस्ताव हैं? मैं कम्युनिस्टों को इतनी अच्छी तरह से जानता हूं कि……क्या तुम यह कहना चाहते हो कि बिल्ली गले में माला लटका कर रामनाम लेने लगी हैं तो चूहे खाना छोड़ देगी। जनाब आप लोग प्रस्ताव पास न करते तो करते क्या? जल में रहकर मगर से बैर वाली बात है। अगर कम्युनिस्ट पार्टी इस अवसरवादिता से काम न लेती तो इस भारत में अब तक नाम लेवा भी रहना मुश्किल था।"

"आप तो हद से बाहर जा रहे हैं। मैं कहता हूं……"

"जो कहना हो कहिए। जहां तक हद की बात है आप बतायें कि पश्चिम बंगाल में मुक्तिसेना के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी का प्रचार और देश के कोने कोने में मजबूत साम्यवादी साहित्य को कौन वितरित कर रहा है? हजरत हद के भीतर तो हम हैं। बाहर आप हैं। देश की धरती पर माओ के राज्य का स्वप्न देखने वाली कम्युनिस्ट पार्टी देश-द्रोही नहीं तो और क्या है?"

अन्तनाथम के क्रोध की सीमा न रही। उठकर वह चलता हुआ बोला—"जिस आदमी को बात करने की भी तमीज नहीं उसे लोग कैसे नेता चुनते हैं यह समझ में नहीं आता।"

गोपाल ने उसके हाथ पकड़ कहा—"इसलिए चुनते हैं कि वह बेवकूफ हैं यही कहना चाहते हो न? तो सुनो, बेवकूफ अगर वह न होते तो वोट का सदुपयोग करते, जो नहीं किया जाता।"

प्रोफेसर ने गोपाल की पीठ थपथपाते हुए कहा—"बस गोपाल, काफी कह चुके।"

सैंतालीस

कविता जब से जय से मिली थी, वह एक द्विविधा में थी। वह जानती थी कि रनवीर ने किन्हीं भावों के आवेश में आकर सेना में भरती होने का निश्चय कर लिया है। सेना में भरती होने का क म उसकी दृष्टि में कोई अनुचित न था। देश और उसकी सीमाओं की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देना एक महान गौरवास्पद कृत्य है। यह बह मानती ही नहीं इसके लिए वह प्रचार भी करने लगी थी, किन्तु गोपाल राठोर ने जन नायक जिसकी वाणी और मेधाशक्ति की प्रशंसक पूरे इलाके की जनता और पार्लमेंट थी, सेना में भरती होकर क्या करेगा वह समझ नहीं पाती। एक सैनिक की दृष्टि में वह जितनी देश सेवा कर पायेगा उससे हजार गुनी सेवा एक सफल नेता की हैसियत से वह भारतीय जनमन की कर रहा था। ऐसी हालत में उसका यह निश्चय अत्यन्त हैरत और परेशानी का कारण बन गया था।

इसी उधेड़बुन में वह थी कि जय आ गया। वह एक विचित्र परिस्थिति में था। कानून की दृष्टि में उसके इतने अपराध थे कि वह प्राणदण्ड का भागी हो सकता था। उसका अपना विचार इस विषय में चाहे कुछ भी हो लेकिन कानून उसका शत्रु था और इस विषय पर मनन किया और यह धारणा अपने मन में किंचित भी नहीं रहने दी कि उसने कोई अपराध किया है। उसने वही किया जो एक पुरुष को करना चाहिए था। कानून अपने हाथ में उसने अवश्य लिया, किंतु जब इसके अतिरिक्त कोई उपाय ही न था तब। जिसके भले और हित की

दृष्टि से अपमानित, निरादृत और लांछित होकर वह गाँव छोड़कर,...
उस बेबस और निरीह विधवा के चरित्र के साथ खिलबाड़ किया जाये, बलात्कार हो, यह कोई भी नहीं देख सकता, और जब पुलिस भी उस समाज शत्रु, मानवता के कलंक का पता नहीं लगा सकता तो......

इन्हीं विचारों में उलझी वह एक दिन जयनाथ के सामने पड़ गई। जयनाथ पूछ ही तो बैठा—"क्या बात है भाभी ? खोई खोई सी क्यों रहती हो ?"

"तुम्हारी चिंता में।"

"इससे क्या होगा ?"

"कोई उपाय निकालूंगी खोजूंगी।"

"जरूरत नहीं भाभी !" जयनाथ ने गंभीरता से कहा—"मैंने और रनवीर ने इस विषय पर कुछ बातें की थीं उनके आधार पर एक निश्चय भी कर लिया है।"

'क्या ?"

"आत्म-समर्पण।"

"आत्म-समर्पण ?"

'किसके सामने ?'

"पुलिस के।"

"यह तो आत्महत्या हुई।"

"नहीं भाभी आत्मोत्सर्ग।"

"किसके लिए ?"

'न्याय, सदाचार और अपनी प्रिय कल्पना की कामिनी सोनी के लिये।'

"लाभ क्या ?"

"ऊपर से देखने पर कुछ नहीं, लेकिन वास्तव में बहुत।"

"वह कसे ?"

"इसलिए भाभी कि उससे मुझे सन्तोष होगा। अब मेरी स्थिति जो है वह एक चोर जैसी ही। मैंने एक ध्येय, एक आदर्श को सामने रखकर यह कत्ल किया है अपनी सोनी के साथ किए गए अत्याचार का प्रतिशोध लिया है, और कानून को अपने हाथ में लेकर एक व्यभिचारी दुरात्मा को दण्ड दिया है। मैं समझता हूं कि वह ठीक था, लेकिन उस के बाद जो चोर की तरह भागा फिर रहा हूं इससे लगता हैं मैंने कोई अच्छा काम नहीं किया है। बल्कि जो किया था उसके ऊपर भी पानी फेर दिया।

"सच्चा प्रतिशोध तो तब था जब मैं अपने किये का दण्ड भुगतता। मेरी आत्मा एक दिव्य आलोक से उद्भाषित हो जाती, वह मेरे प्रतिकार का पुरस्कार होता। प्रायश्चित होता। किन्तु······इसीलिए भाभी आत्मसमर्पण करूंगा, अदालत में जाऊंगा न्याय और सत्य के संरक्षकों से भी मस्तक ऊंचा कर कहूंगा कि जिस देश में समाज और मनुष्यता की नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले और अपराधियों को दण्ड देने वाले एक अबला की लाज लुटती देखें कुछ भी कर सकें, अधर्म और पापाचार की नौका बिहार करती तथा सतीत्व का बेड़ा डूबते देखें और न बचायें उस देश के आत्माभिमानी मनुष्यों को कानून हाथ में लेकर यही करना पड़ता है जो मैंने किया है। चाहे इसके लिए उन्हें फाँसी के तख्ते मिलें या कारागार की दीवारें।"

फिर कुछ रुककर बोला—"मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूं भाभी, मैं उन न्याय के ठेकेदारों को चुनौती दूंगा कि जब भी कोई दुःशासन किसी द्रौपदी का चीर हरण कर उसे और उसके नारीत्व को नंगा करने की कोशिश करेगा, तब यही होगा, मरे चाहे कोई भी।"

"लेकिन इससे तुम बचोगे तो नहीं।"

"हो सकता है भाभी! किन्तु यदि उसके लिए मैं मृत्युदण्ड का भागी बना तो हंसते-हंसते उसे भी स्वीकार करूंगा।"

कविता चुप हो गई। वह जानती थी कि जय ने जो कहा वही ठीक था फिर भी उसने कहा—"पर यह करने से पहले तुम्हें कुमुद से पूछना होगा। यदि वह कहेगी तो मैं तैयार हूं। आज ही से प्रयत्न करती हूं कि ऐसे प्रमाण और साक्षी तैयार करूं जो तुम्हें अदालत से निकाल कर फिर इसी दुनियां में लाएं, कुछ करने के लिए जीवित रखें।"

"तो फिर कुमुद और शम्शा को भी इस काम के लिए राजी तुम्हीं करो भाभी, कहो उनसे कि यदि पुलिस के हाथ पड़ गया तब वे क्या करेंगी?"

"कोशिश करूंगी।"

"कोशिश नहीं पूर्ण यत्न।"

"अच्छा बात है लेकिन एक शर्त पर।"

"क्या?"

"मैं रनवीर के सारे दल की एक मीटिंग बुला रही हूं उसमें उसके सेना में भर्ती होने के प्रश्न पर विचार होगा। तुम उसे इस बात के लिये तर्कशक्ति से तैयार करो कि वह सेना में भरती होकर, इस डाके-जनी के रास्तों को छोड़कर एक सच्चे जननेता की तरह उसका साथ दे, आज भारत एक दुराहे पर खड़ा है। उसकी आजादी का दिया अभी पूरी रोशनी से जला भी नहीं था कि तेज आंधी चल पड़ी है, ऐसे समय तत्वदर्शियों, शुद्ध देशभक्ति के विचारकों और जनसेवकों ने राष्ट्रीयता के तत्त्व से जन-मन को अनुप्राणित करने का प्रण लिया है, देश को एक नयी दृष्टि से देखें।"

कविता चुप हो गई तो जय ने कहा—"तुम तो भाभी इस जगह बहुत ही ऊंची उठ गई हो।" अचानक उसने नीचे झुककर कविता के पैर छूकर कहा—"कसम इनकी भाभी, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।"

कविता का जैसे जीवन जाग गया। हँसकर जयनाथ से बोली—"तो

चलो अब शम्शा और कुमुद की भी खबर लें। वे बेचारी भी न जाने किन-किन विचारों में पडी होंगा ?"

अड़तालीस

चीन के आकस्मिक युद्ध विराम ने न केवल भारत के राजनीतिक विचारकों और कूटनीतिज्ञों को आश्चर्य और असमजस में डाल दिया, अपितु सारे विश्व को इस विषय पर सोचने के लिए विवश कर दिया। किन्हीं की राय में यह चीन की एक चाल थी, कुछ कहते थे कि यह उसकी सदाशयता है और कुछका विचार था कि यह रूस की नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ है। साम्यवादी खेमे में जो फूट और दरार पड़ने लगी थी उसी के कारण ऐसा हुआ ? इसके बाद कोलम्बो सम्मेलन और उसके प्रस्तावों की भी चर्चा चली। भारत और चीन के उसके प्रति रुख स्पष्ट हुए। तब रनवीर और उसकी पार्टी ने एक मत से यही निर्णय किया कि यह केवल माओ की चाल है अपनी सदाशयता और युद्ध अप्रियता की छाप संसार के अधिकांश देशों पर डालने के लिए उस ने यह चाल चली है। इसके अतिरिक्त अवसर की ताक में शक्ति-संचय और भारतकी नाजुक स्थितियों का पता लगाकर उस पर वार करना भी उसका उद्देश्य था।

जय और कविता के मामूली तौर पर समझाने के बाद सेना में भरती होने का निश्चय तो रनवीर ने त्याग दिया; किन्तु अपने प्रबंध कार्यों को वह पूर्ण रूप से बन्द करे या नहीं, इसका निर्णय करने के

लिये एक अत्यावश्यक मीटिंग कविता ने बुलाई। इस मीटिंग में देश के लगभग सभी प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया था जो रनवीर के अधीन कार्य कर रहे थे।

ठीक समय और स्थान पर मीटिंग प्रारंभ हुई तो सर्वसम्मति से दिल्ली की कुमारी शैलजा को सभापति चुना गया।

अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा—'जैसा कि सूचित किया जाता है दल की महासचिव ने यह सभा इसलिए आयोजित की है कि हम देश की वर्तमान परिस्थिति में अपने कार्यक्रम के औचित्य और उस में हो सकने वाले संभव परिवर्तनों पर विचार करें। अधिक सदस्य अपनी राय इस विषय में व्यक्त कर सकने के लिए स्वतन्त्र हैं।''

इतना कहकर वे बैठ गयीं और वाद विवाद आरंभ हो गया। लगभग आधे घटे तक तो कार्यक्रम सामान्य गति से चलता रहा; किन्तु उसके बाद अच्छानक दल के प्रमुख स्तम्भ डा. सचिन के खड़े होने पर एक नई तीव्रता वातावरण में व्याप्त हो गई।

सचिन ने खड़े होकर कहा–"जिन सदस्यों को हमारे कार्यक्रम, उसके कार्यान्वयन और औचित्य पर विश्वास नहीं है उन्हें चाहिए कि वे अपने दल को छोड़ने का निश्चय करें। दल जिस उद्देश्य के लिए बना है उसके अनुसार कार्य करेगा और यदि उनमें रुकावट हुई तो जैसा अब तक होता आया है वही होगा। राह के रोड़े, कंकर और पत्थरों को कुचलते हुए यह दल आगे बढ़ेगा।

इस पर जयनाथ खड़ा हो गया···"किन्तु क्या यह आप आवश्यक नहीं समझते कि देश की परिवर्तित स्थितियों में हम भी अपने कार्यक्रमों में परिवर्तन करें।"

सचिन तुरन्त कह उठा···"क्या आप बता सकते हैं कि आप हमारे दल के सदस्य कब से हैं?"

जयनाथ तो इस प्रश्न का उत्तर दे ही नहीं पाया कि कविता ने कहा—"यह एक आमन्त्रित हैं और इन्हें दल के नेता की राय से विशेष आग्रहपूर्वक सभा में निमन्त्रित किया गया है।"

इस पर सबकी दृष्टि रनवीर की ओर उठ गई। ऐसी हालत में रनवीर ने खड़े होकर जयनाथ को सम्बोधित करते हुए कहा—"मिस्टर जयनाथ आपको मैंने विशेष रूप से इसलिए बुलाया है कि विस्तृत प्रकाश इस तथ्य पर डालें कि गोया हम लोग अपने इसी अभ्यस्त मार्ग पर चलें या किसी तरह का कोई परिवर्तन करें।"

रनवीर का दल में अत्यधिक आदर था। स्वयं सचिन की दृष्टि में भी अतः उसके इतना कहने पर जय की सदस्यता का प्रश्न समाप्त हो गया और जय ने कहना आरंभ किया—यद्यपि जैसा कि स्वयं सचिन जी भी जानते हैं मैं भी इस प्रकार के कार्यों के विरुद्ध था, किन्तु कुछ कारण वश मै स्वयं वही कर बैठा जो आप करते हैं। इसके बाद में पुलिस का अपराधी……सूची पर खरा उतरता गया हूं, आज भी हूं। खैर……

वह कुछ रुक गया। सोचता रहा। दो तीन मिनट तक चुप रहने के बाद बोला मैं आप लोगों से कुछ प्रश्न करूंगा पहले आप उनके उत्तर दें।

पूछिए—सम्मिलित आवाज थी।

जय ने पहला प्रश्न किया—व्यक्ति और परिवार में कौन बड़ा है?

'परिवार!"

"परिवार और गाँव में?"

"गांव।"

"गाँव और जिले में।"

"जिला।"

"प्रान्त तथा देश में।"

"देश !"

अब जय ने कुछ रुककर पूछा—"यदि ये भ्रष्टाचार और पापाचार को दूर करने का दावा करने वाली समता और स्वतन्त्रता दिलाने वाली कोई विदेशी शक्ति उसके सम्मुख आये तो आप अपने अच्छे या बुरे समाज और सरकार को सुधारने के पक्ष में होंगे या उस विदेशी शक्ति का समर्थन करेंगे।"

"अपने देश और समाज की स्थिति ही सुधारेंगे।"

अब जयनाथ सीधा खड़ा हो गया। कविता उसके कथन का अर्थ समझ रही थी। वह बहुत प्रसन्न थी।

कविता ने खड़े होकर प्रार्थना की। अब शीघ्र ही हमें निश्चित विषय पर आ जाना चाहिए।

"मैं अपने विषय पर ही हूं।" जय ने हंसते हुए कहा—"आज मैं स्पष्ट रूप में अपनी बात पर आ रहा हूं। आप जानती हैं कि यह दल समाज के दर्शित तत्वों को समाप्त कर उनके भार से इस धरती को मुक्त करता रहा है। इस कार्य में लगे आदरणीय श्री रनवीर को लगे अनेक वर्ष बीते किन्तु क्या पूर्ण हुआ ? शायद नहीं, बल्कि यदि आँकड़ों को देखा जाय तो मैं यह कहूंगा कि भाई रनवीर ने इतनी हत्यायें की, लोगों से करवायीं और हर सम्भव प्रयत्न अपने आदर्शों और उद्देश्यों के अनुसार भ्रष्टाचार की समाप्ति के लिए कियें किन्तु हुआ कुछ नहीं क्योंकि एक कहावत है...जहाँ एक शहीद के खून की बूंद गिरती है वहां हजारों शहीद पैदा होते हैं। इसी तरह एक भ्रष्टाचारी की मौत भी उनकी बढ़ोतरी में ही शायद सहायक है। आप जानते हैं कि यदि शरीर का कोई भाग खराब हो जाय तो काटा नहीं जाता, पहले उस का इलाज किया जाता है। यह हम समाज के साथ भी क्यों न करें।

एक आदमी हमारे शरीर पर कब्जा करना चाहे तो हम ऐसे समय में यह कोशिश हरगिज नहीं करेंगे कि हमलावर से हम शरीर की रक्षा करें। उससे बच लेंगे तो बाकी शरीर की रक्षा और देखभाल भी हो हो जाएगी।

"बिलकुल ठीक।" कई एक स्वर एक साथ कह उठे।

जय का साहस बढ़ गया। साथ ही कविता को भी लगा कि उसकी इच्छा पूर्ति में सफलता मिलेगी। जयनाथ से उसने आग्रह किया—"आप विषय को और अधिक स्पष्ट कीजिए।"

सचिन बोला—"मिस्टर जय! आपकी बातें यद्यपि मेरे अब तक के दृष्टिकोण से अलग जा रही हैं। फिर भी, मैं उन्हें सुनना चाहता हूं आप कहते रहिये।"

सभापति ने ऐसे समय में आदेश दिया—"माननीय वक्ता को स्वतंत्र रूप से भाषण करने दिया जाय। कोई भी सदस्य बीच में बोलने का प्रयत्न न करे।"

जयनाथ ने फिर कहना शुरू किया—"मेरी दृष्टि तो इस समय भारत पर लगी है। एक ऐसी स्थिति में इस समय मेरा भारत खड़ा है कि मुझे मजबूर होकर कहना पड़ रहा है। राज्योंको देखो जिलों को मत देखो, गाँवों को मत देखो, यह वह समय है कि जी भरके देखो, और अपने देश को देखो। उसके सिर पर खड़े लुटेरों को देखो और सोचो कि इन हब्शी लुटेरों का मुकाबला हमें करना है। इनकी शक्ति को देखना है, अपनी कुव्वत को दिखाना है। मैं मानता हूं कि जिस हालत में आज हमारा देश आया है उसके लिये हमारी सरकारी नीतियां भी जिम्मेदार हैं। हम जो अहिंसा और शाँति के नाम पर चलते-चलते यह भूल गए कि जरूरी नहीं है और लोग भी इन सिद्धांतों को मानेंगे। इन पर अमल करेंगे। हमने यह परखने की कोशिश नहीं कि हमारी अहिंसा शक्ति में स्थायित्व है या नहीं। अहिंसा उनकी नीति है जो

सशक्त हैं जो निर्बल हैं उनकी अहिंसा कायरता है। हम उसी कायरता के मार्ग पर अनजाने चल पड़े अब उसके परिणामों को हमें भुगतना पड़ रहा है।"

सचिन अब चुप न बैठ सका, किन्तु जय जी, क्या इसके लिए हमें सरकार की निंदा नहीं करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इसका यह मतलब तो नहीं कि जो हम कर रहे हैं उस काम को छोड़ दें।

जय हँस पड़ा···मैं आपकी उत्कण्ठा और सिद्धांतप्रियता का कायल हूं, किन्तु यहां प्रश्न विचार करने का है और उसके लिए मैं एक बार फिर पूछता हूं कि देशभक्ति पर इस दल के सदस्य विश्वास करते हैं या नहीं?

इस प्रश्न पर सब सदस्य बोखला गए—"हम में देशभक्ति नहीं है यह बात आपके दिमाग में कैसे घुस गई? हम देश और उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व होमने को तैयार हैं। हमारा तो साँस-सांस राष्ट्र पर बलिदान है।" सचिन कह उठा।

मैं आपकी बात से सहमत हूं। उस पर पूर्ण विश्वास और आप में आस्था रखता हूं। मैं अपने प्रश्न के लिए क्षमा चाहता हूं, किन्तु जो कहना है उसके लिए स्पष्ट करना अनिवार्य हो गया था।

"अब आगे कहिए।" सभानेत्री ने कहा—"सदस्यों से पुनः कहा कि वे बीच में न बोलें।"

जयनाथ ने आगे कहना शुरू किया—दोस्तो, हम आज कम्युनिस्टों की आलोचना इसलिए कर रहे हैं जबकि देश की प्रभुसत्ता, अखण्डता और स्वतन्त्रता का प्रश्न सामने है। तब भी वह साम्यवाद और समानवाधिकारों के नाम पर विदेशी सत्ता का समर्थन कर रहे हैं। उनकी समानता की क्रांतिकारी गतिविधियां भारत की भूमि पर माओ और ख्रुश्चेव के स्वप्न चरितार्थ करने में लगी हैं। यह उनका भ्रम है, अपने सिद्धांतों और अपनी संस्कृति के अनुकूल तत्वों से हम भारत की सुख समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करेंगे। ऐसी हालत में सुखी और नए भारत के

निर्माण के लिये जो कदम हम लोग अब तक उठाते रहे हैं, वही यदि अब भी उठाया गया हो तो इससे जनता में एकता और संगठन की जो भावना पैदा हो रही है उसे आघात पहुंचेगा। जनता का मनोबल क्षीण होगा और एक राष्ट्र, एक सत्ता और एक जनतन्त्र का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा।

मैं जानता हूं कि यह दल उसके अपने हित और ऐशपरस्ती के लिए इस हिंसा मार्ग पर नहीं चल रहा, इसका उद्देश्य महान है किन्तु जो मैंने कहा है उस बात को ध्यान में रखते हुए हमें कार्यक्रम को बदलने और उस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। आप लोग सब शिक्षित और योग्य हैं समझिए कि केवल एक प्रत्यक्ष भ्रष्टाचार ही नहीं और भी अनेक समस्याओं से यह देश पिसने जा रहा है। आप लोग देखते रहिए, दक्षिण भारत के अनेक दल छोटी छोटी संस्थाएं और व्यक्ति यह विचार कर रहे हैं कि क्यों न वे एक पृथक इकाई बन जाएं। कश्मीर खतरे में है, नागालैंड और अनेक प्रदेशों की स्थिति आप समझते ही हैं। ऊपरी तौर पर जो दिखाई दे रहा है भीतर से वह भारत नहीं है। साम्यवाद भाषावाद और जातिवाद अनेक ऐसे जाल हैं जो इसके लिए सिर पर बदली बनकर मंडरा रहे हैं। ऐसी स्थिति में एक प्रमुख समस्या जो अभी हमारे सामने और बहुत शीघ्र बहुत उग्र रूप में आने वाली है ,राष्ट्रभाषा की है। अब आप ही बताइये, क्या यह समय जब कि भीतर और बाहर हर जगह देश को एक विषाक्त कीड़े ने घेर रखा है, इस मार्ग पर चलने पर जिसके आप लोग राही हैं, विचार न बदलेंगे।

इतना कहने के बाद जयनाथ ने सब सदस्यों को धन्यवाद दिया और अपनी राय पर विचार करने की प्रार्थना कर सभानेत्री की आज्ञा ले बैठ गया।

जय के बैठने पर रनवीर अपनी जगह से उठा और जयनाथ के समीप जाकर उससे गले मिला, मैं हार गया जयनाथ तुमसे। तुम न जाने किस

शक्ति से निर्मित हो कि मुझे झुका ही लिया। मैं नए उद्देश्यों और ध्येयों की रूपरेखा के साथ एक नई योजना बनाने का उत्तरदायित्व तुम्ही पर छोड़ता हूं···तुम !

रनवीर कुछ और कहता इससे पहले ही जयनाथ ने कहा—उसके लिए मैं विवश हूं। आप जानते हैं कि मैं कानूनी मुजरिम हूं। पुलिस और कारागार की दीवारें मेरी ओर देख रही हैं।

अब रनवीर को जैसे होश आया···तो क्या हुआ ? हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

'निश्चित रूप से।'' हमारे रहते पुलिस आपका बाल बांका नहीं कर सकती। अनेक स्वर एक साथ गूंज उठे।

सभानेत्री ने भी खड़े होकर कहा—''मिस्टर जय पर यदि कोई भी संकट आया तो हम अपने प्राणों की बाजी लगायेंगे।''

जयनाथ हँस पड़ा—''इतनी देर तक जिस योजना और उद्देश्य की चर्चा हम करते रहे, वह बड़ी ही जल्दी आप लोगों को याद नहीं रही। सभानेत्री महोदया, अब यह दल हिंसक वृत्ति नहीं जनमार्ग का राही है। मैंने अपराध किया है मुझे दण्ड मिलना चाहिये। कोई कारण नहीं कि मैंने जो किया उसके लिए सबको परेशान करूं। मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं कि मुझे आत्मसमर्पण करने दें। फिर जैसा कानून चाहेगा। यदि उससे मुक्त हुआ तो मैं आपकी सेवा में आऊंगा।''

स्तब्धता चारों ओर छा गई। कोई कुछ नहीं कह सका। सब जैसे सोच रहे थे। तभी कविता न जाने कहां से कुमुद को ले आई। कुमुद आ कर जय के पैरों में पड़ गई। उसने कहा—

''मेरे देवता···अपनी सब जमा पूंजी मैंने कुछ ही दिन हुए रक्षा कोष में दी थी। अब आपको भी मैं स्वयं ले जाकर न्याय के द्वार पर दे आऊंगी। न्याय सत्य और मनुष्यता के लिए मैं भी मरूंगी। मैं आपकी हूं। एक भारतीय नारी के नाते मेरा अधिकार आप पर सर्वोपरि है।

मै नहीं चाहती कि कोई मेरे अबोध बच्चे को एक फरार खूनी की औलाद कहे। आपने जो किया है वह ठीक समझ कर किया है। फिर अदालत में जाने से भय क्यों? न्याय कोई शत्रु नहीं है आपका। भरी कचहरी में ललकार कर कहिए कि आपने एक स्त्री के सतीत्वहरण का प्रतिकार लिया है। एक अबला के साथ किए गए व्यभिचार का प्रतिशोध लिया है। कहिये न्याय के ठेकेदारों से, आप आदमी हैं आपके पास दिल है, इंसान का दिल। पुलिस एक समाजी दरिंदे पर दया कर गई। आपका इंसानी दिल नहीं कर सका। नहीं कर सकता...

और अचानक कुमुद बेहोश होकर एक ओर लुढ़क गई।

कभी-कभी आदमी की जिंदगी कुछ ऐसे आकस्मिक ढग से बदलती है कि वह अपने भूत और वर्तमान को देखता है तो आश्चर्य चकित हो उठता है कि इतनी लंबी खाई आखिर उसने किस तरह पार कर ली। वह अपने अतीत के कटु सत्यों में इतना खोया रहता है कि वर्तमान के स्वर्णिम क्षणों को मात्र स्वप्न समझ कर उन पर विश्वास ही नहीं कर पाता। यही स्थिति शम्शा की भी थी जय जब उसे मिला था तो उसने देखा था कि वह एक अजीब स्थिति में थी। बंशानुगत परम्परा के साथ वेश्यावृत्ति से बंधी न थी इसलिए केवल व्यर्थ ही उसका ध्येय न बन सका। उसे भी विश्वासघातक परिस्थितियों में इस कोठे और उसके भीतर के बीच ला पटका गया था। वह इतनी मैली और घृणास्पद थी कि एकबारगी आत्महत्या की प्रेरणा उसमें जगी; लेकिन न जाने किन जन्मजात संस्कारों ने उसे रोक लिया। वह जीवन में मृत्यु को वरीयता न दे सकी। संघर्ष और संग्राम के लिये उसकी कमर कसी गई। अपने "जेहि विधि राखे साइयां" वाली कहावत के अनुसार वह अपने वर्तमान से जूझने को तत्पर हो गई। कीचड़ में से कमल उगता है तो क्या जीवन के झरोड़ों से वह पार नहीं निकल सकती। निकलेगी, उसने यह सोच

लिया और प्रतीक्षा करने लगी कि उस समय की जब यह गंदे कोठे की दीवारें उसे विदा देंगी। कहेंगी···हम तुम पर अपना रंग न चढ़ा सकीं। तुम अपना रंग हम पर चढ़ा गईं।

जय को देख उसे अपना कुछ निश्चय स्मरण हो आया। उसने अपने मनोबल को संचित किया। संवारा और हृदय को वश में रख भीतर ही भीतर दर्द के आँसू पीकर उसने शोहरत के सातवें आसमान पर भेज दिया। एक यात्रा के लिए। जय ने उसकी इच्छापूर्ति में भर-सक योग दिया। वह उन्नति के तुंग शिखरों पर चढ़ने लगा। चढ़ता गया।

एक दिन शम्शा ने देखा। जय शोहरत के आसमान पर कई बार चढ़ा, लेकिन उसके साथ एक-एक परी भी लग गई। फिर उसके आत्म-गौरव ने शक्ति बटोरी और हसते-हंसते कुमुद के हाथ में जय का हाथ देकर वह अपनी गन्दी गलियों में वापस चली गई।

सहसा वज्रपात हुआ। आसमान जैसे भर गया। जय धरती पर फिर आ गिरा। अखबारों के पन्ने उसके काले कारनामों से भर गये। भरते गये। वह न जाने किस दुनिया में खो गया।

फिर जय मिला, उसे देखा बदला नहीं, और भी सँवर गया लेकिन, जब उसे पता चला कि कुमुद स्वयं जय को लेकर पुलिस को सौंपने जायगी। रनवीर का दल भंग होगा और जयनाथ फिर कहीं दूर जा छिपेगा उससे पूछे बिना। उसकी स्वीकृति और सलाह लिए बिना। वह अनमनी हो गई, वह एक वेश्या ही रह गई। उसे लगा, उसके पास देने के लिए भी कुछ न था। लेने की अधिकारिणी वह नहीं। वह बिना किसी से कहे फिर मेरठ चली गई अपनी हालत पर रहम आने लगा उसे क्या हो गया यह ? उसके प्राण जैसे किसी दूसरे लोक में जा रहे हों। वह निरपढ़सी अपने दैनिक कार्य में लग गई। उसके स्वप्न निश्चय और

विश्वास सब जय की भावना में बह गये। एक छोटी सी बात ने उसके हृदय को उद्वेलित कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि इस कोठे और इसकी सब सम्पदा को छोड़ किसी दिन वह शीघ्र चली जाएगी। कहीं दूर इतनी दूर कि जहाँ कोई न जा सके। वह केवल अपने अतीत की याद में बैठ आँसू बहा सके।

कई दिन बीत गये।

ऐसे ही विचारों और संशयों में उलझी एक दिन वह अपने कमरे में बैठी महफिल के लिये श्रृंगार की तैयारी कर रही थी कि पीछे से किसी ने आकर उसकी आँखे मींच लीं। अपनी सब सहेलियों और नौकरानियों के नाम उसने लिये फिर भी काई सच न निकला। आखिर वह हार गई, कहकर वह उन दो हथेलियों के बन्धन से छुटी तो विभ्रान्त षोडशी की तरह उसने देखा कि जयनाथ उसके सामने खड़ा है। वह कुछ कह न पाई। क्या कुछ सोच रही थी और क्या सामने आ गया ? जय ने ही मौन भंग किया—"क्या अच्छा नहीं लगा मेरा आना ?"

शम्शा चुप रही—

"तो चला जाऊं मैं ?"

वह अब भी न बोली। जय पीछे को मुड़ा और चल दिया। दरवाजे तक पहुंचा ही था कि शम्शा ने कहा—"ठहरो !"

"जय लौट आया।"

"कैसे आये हो ?"

"तुमसे मिलने।"

"क्यों ?"

"मन ने कहा।"

'तुमने तो कहीं जाने का निर्णय किया था।"

"लेकिन हाँ तुम बिना अनुमति लिये यहाँ चली आई फिर मैं क्यों न आता ?"

शम्शा के आगे जैसे दूर-दूर तक फूल बगिया लहलहा गई। फूल ही फूल। उसका घर आँगन खुशबू से भरग या। नौकरानी को पुकार कर उसने कहा—"आज महफिल नहीं जमेगी? हमारी तबियत नाशाद है।"

"जी बहुत बेहतर।" कहकर नौकरानी चली गई तो जय ने कहा-

इतनी नाराज हो गईं कि मुझसे मिलकर न आयीं। तुम जो कह रही हो मैं जानता हूं। पर सोचो शम्शा, मैं जयनाथ हूं क्या तुम्हारे ख्वाब की तस्वीरें जो तुमने जब कहा वैसा मैंने किया। अब भला बिना तुम्हारे कहे कैसे वहाँ जा सकता हूं यहाँ आने में लग रहा है कि जीवन के सबसे उज्ज्वल मार्ग पर जा रहा हूं।

सोते समय शम्शा ने जय से कहा—"मेरी कुछ बातें मानोगे?"

"कहो।"

मैं अपना यह कोठा तुम्हारे जाते ही छोड़ दूंगी और तुम्हारे गाँव में जमीन लेकर रहूंगी।

"मगर···"

'तुम्हारे मुकदमों की पैरवी मेरे अलावा कोई नहीं करेगा।"

"मैं यह पहले ही तय करके आया हूं और······"

तुम अगर छूट न सके और तुम्हें कुछ हो गया तो······मैं······ इस दुनियां में नहीं रहूंगी।

इस बात पर जय चोंककर खड़ा हो गया। जोर से उसने शम्शा को झंझोड़ दिया। क्या कह रही हो यह, पागल······

शम्शा ने जय के मुंह पर हाथ रख दिया, नहीं अब कुछ मत कहो तुम्हें मेरी सौगन्ध! जो अब तुम मुझसे कहो।

जय आहिस्ता से बैठ गया। शम्शा को खींचकर उसने गले लगाना चाहा तो उसने कह दिया–"छि यह क्या भावुकता है। मुझे वह मत दो जो मेरा हक नहीं है।"

"तुम्हारा हक क्या है?"

"जो तुमसे मिलता है।"

दोनों की हंसी में जैसे रात यूं ही बीत……

इसके तीसरे ही दिन अखबारों में छपा—पति को पत्नी ने पुलिस के सुपुर्द किया।

श्रीमती कुमुद जयनाथ का नया आदर्श!

……………………………

नाछे जयनाथ का बृहद परिचय और उसका बयान था और कुमुद की कर्तव्य परायणता की प्रशंसा थी।

समाप्त